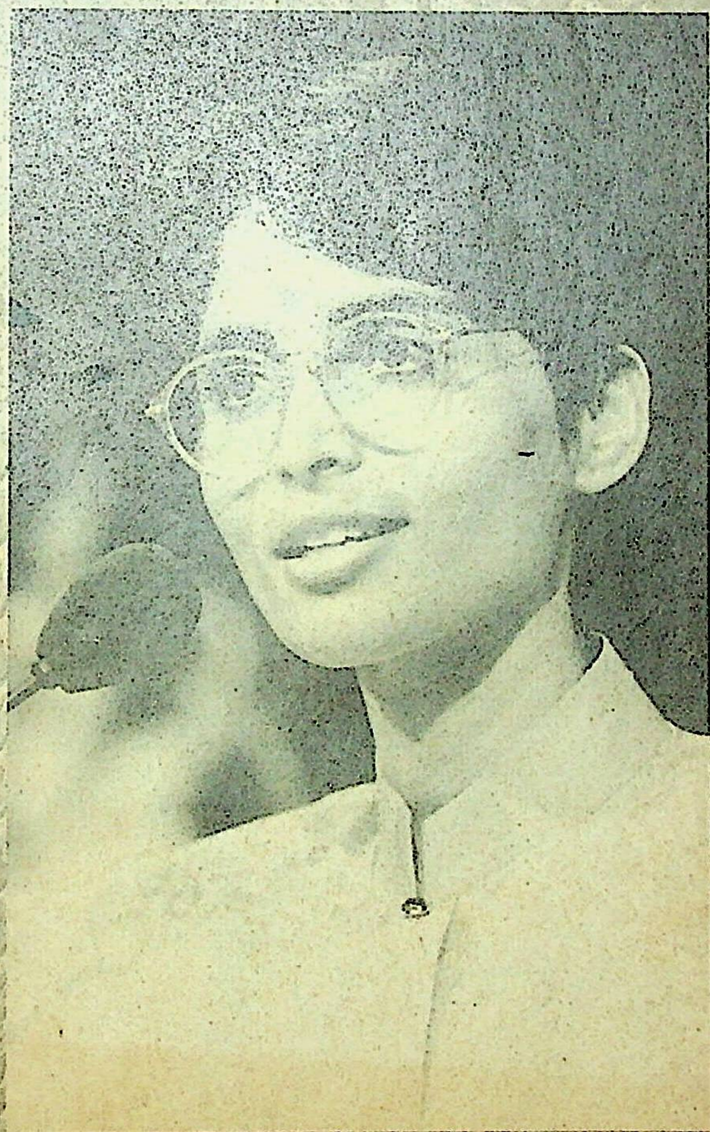
79

नीलेश्वरी



१५ मई १९९१ तीर्थ यात्रा

भगवान यहाँ नहीं हैं तो वहाँ भी नहीं हैं और वहाँ हैं तो यहाँ भी अवश्य हैं। क्या इस रहस्य की गुत्थी सुलझानी है? यह अंक पढ़िये।

सम्पादकीय

पवित्रता तीर्थ है • महाभारत व गरुड़ पुराण से — *जो क्षण, जो कण, जो मन पूर्ण पवित्र है, वही परम तीर्थ है। वह दूर कहाँ है?* २

ये जीवन शक्ति-चक्र • स्वामी कृपानन्द — *सिद्धों के स्पर्श से सजीव हुई वह मिट्टी, शक्ति-स्पन्दनों में थरथरा रही है। क्या उसका स्पर्श करेंगे?* ३

शिव की ज्ञानवापी • पौराणिक कहानी — *जैसे भगीरथ स्वर्ग की गंगा को पृथ्वी पर ले आये वैसे ही कुछ निराले भक्तों ने इसी पृथ्वी पर स्वर्गीय तीर्थों को अवतरित कर दिया।* ६

बोल अनमोल • बाबा मुक्तानन्द के साथ प्रश्नोत्तर — *एक बार सिद्धगुरु के घर आना ही बहुत है; गंगा-स्नान है। वह तुम्हारे सभी पापों को धो डालेंगे।* ८

चमकीले पड़ाव • वामन ग्रेग — *गुरु से मिलने की इच्छा तो एक बहाना है। जब गुरु बुलाते हैं तो पहाड़ भी चोटी के बल भागा आता है।* १०

एक यात्रा — आत्मा से आत्मा तक • गुरुमाई चिद्विलासानन्द — *हम हृदय से दूर — बहुत दूर चले जाते हैं। भगवान की खोज में भटक जाते हैं। जब भगवान मिलता है, तो कहाँ?* १२

हृदय का तीर्थ • महानन्दा — सुनो — *हृदय के कानों से सुनो! भगवान विठ्ठल की प्रेम-लीला। वह प्रेम, जो बर्फ सा शीतल और अग्नि सा जाज्वल्यमान है।* १९

नये प्रदेश — सत्य एक • यात्रा समाचार — *भारत भूमि नहीं है; भाव है — वह वहाँ है जहाँ भावना है, देश कोई भी हो!* २२

गुरुदेव सिद्धपीठ, गणेशपुरी, जि. थाना के लिए मानद सचिव टी.यू. खत्री, गुरुदेव सिद्धपीठ, गणेशपुरी-४०१ २०६ द्वारा प्रकाशित तथा वकील एण्ड सन्स लिमिटेड, बंबई ४०० ०३८ में मुद्रित। © १९९१, गुरुदेव सिद्धपीठ। सम्पादकः स्वामी माधवानंद। वार्षिक शुल्कः भारत में ५५ रुपये, विदेश में ३५ डॉलर।





तीर्थ खाली हाथ नहीं जाना चाहिए क्योंकि वहाँ कुछ छोड़ कर आना है। तीर्थ से खाली हृदय वापिस नहीं आना चाहिए क्योंकि वहाँ से कुछ लेकर आना है। जो लेकर आना है, वह पहले से ही अपना है और जो छोड़ कर आना है, वह पहले से ही तीर्थ का है। तीर्थ यात्रा इसी सत्य की अनुभूति के लिए की जाती है।

तीर्थयात्रा शरीर की यात्रा नहीं है। गधे को मन्दिर के खम्भे से बरसों बाँधे रखो, उसे शिवत्व नहीं प्राप्त होगा। और यदि शरीर को सुबुद्धि नहीं चला रही है, तो वह गधा ही है! चारों धाम कर आये पर बुद्धि फिर भी ठिकाने से नहीं लगी, तो शरीर ठिकाने से कैसे लगेगा?

तीर्थ हमसे कहता है, "सब कुछ छोड़ दो। मन से छोड़ दो! तुम ऐसा कर दोगे, तो मैं तुम्हें प्राप्त हो जाऊँगा।" इसीलिए प्रतीक रूप में तीर्थ के पण्डा-पुरोहित कहते हैं, "यजमान, कुछ छोड़ जाओ यहाँ।" हम सोचते हैं कौनसी सब्ज़ी अच्छी नहीं लगती? हम उस सब्ज़ी को छोड़ देते हैं।

यात्रा मन की नहीं है। तीर्थ हो, घर हो, मन तो अपनी यात्रा में लगा ही है। और न यह बुद्धि की ही यात्रा है। ऊपर-नीचे बुद्धि चलती ही रहती है — सुबुद्धि नहीं, तो कुबुद्धि।

यात्रा आत्मा की भी नहीं है। आत्मा स्वयं तीर्थ है। यात्रा तो जीव की है — उस जीव की जिसे शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार के चार खूँटों ने बाँध रखा है। जो जीव आत्मा तक यात्रा कर रहा है, वह जीवात्मा है; वह तीर्थयात्री है और यह जीवन तीर्थयात्रा है।

जब जीव तीर्थ तक पहुँच जाता है तो वापिस नहीं आता। तीर्थ ही हो जाता है।

जो शेष रह जाये — वह तीर्थ!

पवित्रता तीर्थ है

जिस प्रकार
शरीर के कुछ अंग विशेष,
अन्यों की तुलना में अधिक शुद्ध होते हैं,
उसी प्रकार पृथ्वी पर कुछ स्थान
अधिक पावन होते हैं
— कुछ अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण,
कुछ अपने झिलमिलाते स्वच्छ जल के कारण
और कुछ, संतों के निवास के कारण।

ऐसे पावन स्थान को
तीर्थ कहा जाता है जहाँ
या तो पूजनीय संतों का निवास होता है
अथवा उस स्थान से
उनका किसी न किसी रूप में
सम्बन्ध होता है।
ऐसे संत जो मन की इच्छाओं से परे हों,
जो माया के बन्धन से मुक्त हों
और जिन्होंने तप द्वारा
अपने पापों को धो डाला हो।

— महाभारत व गरुड़पुराण से

ये जीवन्त शक्ति-चक्र

स्वामी कृपानन्द

एक दिन श्री गुरुमाई ने मुझसे कहा कि वेंकप्पा के साथ मुझे कहीं तीर्थयात्रा पर जाना चाहिए। हमने धर्मस्थल और आस-पास के स्थानों पर जाने का निश्चय किया क्योंकि यही भगवान नित्यानन्द और बाबा मुक्तानन्द की जन्मभूमि है। धर्मस्थल कर्नाटक में मेंगलूर के निकट एक छोटा-सा स्थान है।

सभी तैयारियों के साथ हम मेंगलूर की यात्रा पर निकल पड़े। मेंगलूर के निकट अरब सागर के किनारे पर बसे उल्लाल नामक स्थान में हमने पड़ाव डाला तथा वहीं से आस-पास के क्षेत्रों की यात्रा की। यात्रा के पहले दिन हम उत्तर केरल में कञ्जनगाड़ गये। इस छोटे-से गाँव में प्राकृतिक सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। लाल-लाल मिट्टी पर लाल ईंटों के बने घरों में छतें भी लाल टाईल की बनी हुई थीं। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, दूर-दूर तक फैले हुए खेत, हरे-भरे ऊँचे-ऊँचे नारियल के पेड़ों की कतारें और स्वच्छ ठण्डे जल से भरी बहती हुई नहरें दिखायी देती थीं।

कञ्जनगाड़ में भगवान नित्यानन्द का आश्रम ढूँढा। वहाँ हमने वह कमरा और उसके आगे वह छोटा-सा बगीचा भी देखा जहाँ बड़े बाबा रहा करते थे। मेरे लिए उस आश्रम की सबसे आश्चर्यजनक खोज थी उसके नीचे भूल-भूलैया-सी फैली अनगिनत गुफ़ाएँ। कहते हैं कि भगवान नित्यानन्द ने स्वयं हथौड़ी और छेनी लेकर इन सभी गुफ़ाओं को उस पत्थर में से काटा था। वहाँ पैंतालीस ऐसे छोटे-छोटे आले के अकार के स्थान हैं।

वहाँ पर वेंकप्पा ने मुझे एक कहानी सुनायी: "एक बार बड़े बाबा की माँ, जो कञ्जनगाड़ की थीं, उनसे मिलने गणेशपुरी आयीं। यह घटना मैंने मोनप्पा से सुनी थी जो बड़े बाबा के लिए भोजन पकाया करते थे। उन्होंने बताया कि एक दिन एक बहुत बूढ़ी महिला गणेशपुरी आयीं। किसी को नहीं मालूम था कि वे कौन हैं। वे बड़े बाबा के एकदम समीप जाकर बैठ गयीं और बड़े बाबा उनसे बहुत देर तक, बहुत प्रेम से बातें करते रहे। बाद में मोनप्पा ने उन महिला से उनका परिचय पूछा तो उन्होंने कहा, 'बड़े बाबा मेरे पुत्र हैं। मुझे यह कहते हुए बहुत अजीब लग रहा है क्योंकि अब तो वे बहुत बड़े बन गये हैं। मैं उनके दर्शन के लिए आयी हूँ।' वे पाँच-छः दिन गणेशपुरी में रहीं और बड़े बाबा के साथ बहुत समय व्यतीत किया।"

एक दिन उनकी माँ ने बड़े बाबा से कहा, "मैं काशी जाना चाहती हूँ। वहाँ भगवान शिव का मन्दिर देखना चाहती हूँ। मैं तुम्हारे साथ वहाँ जाना चाहती हूँ, मुझे ले चलो।"

बड़े बाबा ने कहा, "तुम्हें जाना है तो जाओ। मैं नहीं जाना चाहता।"

दो-तीन दिन तक उनकी माँ उनसे काशी ले चलने का आग्रह करती रहीं।

एक रात, बड़े बाबा ने अपनी माँ से पूछा, "अच्छा, तुम भगवान शिव का मन्दिर देखना चाहती हो या स्वयं भगवान शिव को?" माँ ने कहा, "मैं स्वयं भगवान शिव को देखना चाहती हूँ।" बड़े बाबा बोले, "तो देखो!" उन्होंने अपना हाथ ऊपर उठाया और विश्वनाथ मन्दिर, भगवान शिव उनकी हथेली पर प्रकट हो गये! उनकी माँ तो अभिभूत हो गयीं और बोलीं, "बहुत-बहुत धन्यवाद; बस मुझे और कुछ नहीं चाहिए।" समस्त

तीर्थस्थल एक सिद्ध के अन्दर ही स्थित होते हैं।

हमारी इच्छा थी गुरुवन देखने की जो कञ्ञनगाड़ के निकट ही है परन्तु जंगल के बीचों बीच है। पहाड़ों में यह वह स्थल है जहाँ बड़े बाबा ने काफी समय व्यतीत किया था। अपना शरीर छोड़ने के पूर्व, १९६० में, उन्होंने बाबाजी से वह ज़मीन ख़रीद लेने को कहा। बाबाजी ने वह ज़मीन बड़े बाबा के लिए खरीद ली और वहाँ पर ध्यान के लिए उपयुक्त कुछ कमरे बनवाये, एक रसोईघर और एक मन्दिर बनवाया।

अत्यधिक वर्षा के कारण, वहाँ जाने वाली सड़क पर जाना असम्भव सा था। हमें यह भी चेतावनी दी गयी कि वे पहाड़ियाँ काले-काले कोबरा, नागों से भरी पड़ी हैं।

गुरुवन बहुत छोटी-सी-स्थली है पर बहुत सुन्दर। हमारे वहाँ पहुँचने पर एक पुजारी ने मन्दिर खोल दिया जिसके अन्दर बड़े बाबा की मूर्ति है। वहाँ पर एक छोटा-सा तालाब भी है जिसमें पहाड़ी पर से एक झरना नीचे गिरता है। इसी झरने के पानी से वह तालाब भरा रहता है। बहुत ही सुन्दर जगह है — घने जंगल के बीच एक अत्यन्त शान्त स्थान।

अगले दिन प्रातः हम धर्मस्थल के लिए निकल पड़े। धर्मस्थल के रास्ते में एक गाँव पड़ता है वेल्टँगडे जहाँ कुछ समय बड़े बाबा रहे थे और इस विषय में एक कहानी भी है जो वेंकप्पा ने मुझे सुनायी:

"दिन के समय नित्यानन्द बाबा पूरे गाँव में घूमते रहते थे और रात होने पर प्रतिदिन वहाँ पर रहने वाले एक दर्ज़ी के पास चले जाते थे। वह दर्ज़ी रोज़ रात को बड़े बाबा को कुछ भोजन खिलाता था और उनके लिए एक नयी लँगोटी सिला कर उन्हें पहना देता था। अगले दिन फिर एक नयी लँगोट बना देता था। यह क्रम एक लम्बे समय तक चलता रहा।

"आरम्भ में उस दर्ज़ी के पास मात्र एक ही सिलाई मशीन थी। फिर उसके पास दो मशीन, फिर तीन मशीन हो गयीं। देखते ही देखते वह इतना समृद्ध हो गया कि उसने बारह सिलाई मशीनें खरीद लीं और अपने लिए एक लम्बी-चौड़ी शानदार दुकान भी बनवा ली। वह दर्ज़ी बहुत धनवान होता गया, बड़े बाबा फिर भी प्रत्येक रात्रि उसके पास जाते थे। सभी सोचते थे कि बड़े बाबा कुछ विचित्र हैं परन्तु उस दर्ज़ी ने उन्हें पहचान लिया था।

"एक दिन बड़े बाबा ने दर्ज़ी से कहा कि अब वे उससे मिलने नहीं आया करेंगे क्योंकि वे वेल्टँगडे छोड़कर जा रहे हैं। उन्होंने कहा, 'किसी को यह नहीं बताना कि तुम अमीर कैसे हुए और हमारे बीच में क्या घटा। अगर तुमने कभी इसका ज़िक्र भी किया तो तुम सब कुछ खो दोगे।' बड़े बाबा ने फिर कहा, 'अगर तुम किसी अन्य दर्ज़ी को भी यह बात बता दोगे तो तुम पहले की ही तरह ग़रीब हो जाओगे।'

"कुछ समय के बाद उस दर्ज़ी की पत्नी ने उस पर वह बताने के लिए बहुत ज़ोर दिया जो वह छिपा रहा था। अन्ततः दर्ज़ी ने अपनी पत्नी को पूरी कहानी कह सुनायी — कैसे बड़े बाबा की कृपा से उसको इतनी सफलता मिली। यह बताते ही तुरन्त ही वह अपना सब कुछ खो बैठा! उसके बाद उसके पास केवल एक ही मशीन रह गयी।"

तत्पश्चात् हम धर्मस्थल गये जो भारत के प्रमुख तीर्थस्थलों में से एक है। अपने दान आदि कार्यों के लिए यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है। हज़ारों तीर्थयात्रियों को वहाँ नित्य मुफ़्त खाना दिया जाता है और रहने का स्थान भी। भगवान मंजुनाथ धर्मस्थल के मन्दिर के इष्ट हैं जो भगवान शिव के अवतार माने जाते हैं।

वहाँ पहुँचने के दूसरे दिन हम उन सभी मन्दिरों में दर्शन करने गये जहाँ जाना भगवान नित्यानन्द और बाबाजी को अत्यन्त प्रिय था। पहले हम राजराजेश्वरी के मन्दिर में गये जो मेंगलूर के पास पारोल नाम के एक छोटे-से गाँव में स्थित है। उसके बाद हम

कटील गये जहाँ दुर्गा पारमेश्वरी के दर्शन किये। दोनों ही मन्दिर अत्यन्त मनोहारी व शक्तिपूरित थे। उस रात वेंकप्पा ने स्वप्न में इनमें से एक मन्दिर को देखा। उन्होंने देखा कि श्री गुरुमाई मन्दिर के द्वार तक आयीं और उन्हें यह तीव्र अनुभूति हुई कि वे ही देवी हैं, वे ही दुर्गा हैं। गुरुमाई ने उनकी ओर झिलमिलाती मृदुल मुस्कान फेंकी। वेंकप्पा ने कहा, "जो हो रहा है, उससे गुरुमाई प्रसन्न होंगी।"

उसके बाद हम उडिपी गये। कहा जाता है कि भगवान नित्यानन्द का जन्म यहीं हुआ था। यहाँ पर हमने श्रीकृष्ण का वह मन्दिर देखा जहाँ सन्त कनकदास जाया करते थे। कनकदास नीची जाति के थे अतः ब्राह्मण उन्हें मन्दिर के अन्दर नहीं जाने देते थे। कनकदास मन्दिर के पिछवाड़े बैठकर भक्ति में डूबे हुए अपने प्रिय कृष्ण की एक झलक पाने की लालसा लिए, भगवान का नाम गाते रहते थे। कनकदास की ऐसी भक्ति के कारण, एक दिन कृष्ण की मूर्ति मुड़ गयी और मन्दिर के पीछे की दीवार में बड़ा-सा छेद हो गया, जहाँ से कनकदास को भगवान कृष्ण के प्रिय मुख के दर्शन हुए। दीवार में वह छेद आज भी है जिसमें से जलते हुए दीपों की रोशनी में जगमगाती भगवान कृष्ण की सुन्दर मूर्ति के दर्शन कर सकते हैं।

जब हम उडिपी में थे तो वेंकप्पा ने कहा कि उन्हें अत्यन्त तीव्रता से भगवान नित्यानन्द की उपस्थिति का अहसास होता था। वहाँ पर एक मठ है — कनकदास का [illegible] मठ — और बड़े बाबा वहाँ काफी समय बिताया करते थे।

उस समय वहाँ के निवासियों को यह समझ बिल्कुल नहीं थी कि बड़े बाबा कौन हैं। कहते हैं कि उस समय बड़े बाबा बहुत दुबले-पतले थे। एक दिन, कनकदास की ही तरह, बड़े बाबा मन्दिर के पिछवाड़े बैठे हुए थे। गाँववाले उन्हें पागल समझकर उनपर पत्थर फेंकने लगे। पर उनपर फेंका गया हर पत्थर उनसे छूकर चाँदी के सिक्के में परिवर्तित हो जाता था। तब सब लोग धूल-मिट्टी में से बीन-बीनकर सिक्के निकालने लगे। बड़े बाबा अपने स्थान से उठकर मन्द गति से चलते हुए वहाँ से चले गये। उनके नज़रों से ओझल होते ही गाँववालों के हाथों में दबे चाँदी के सिक्के फिर से पत्थर हो गये।

तब उन्हें यह बोध हुआ कि वे कोई पागल नहीं वरन् कोई महान आत्मा हैं। तब सबने उन्हें खोजना आरम्भ किया पर वे कहीं नहीं मिले। वे तो अदृश्य ही हो गये थे।

अगले दिन हम जिस मन्दिर के दर्शन के लिए गये वह मेरा सबसे प्रिय मन्दिर है। वेंकप्पा ने कहा, "आज हम कोल्लूर जा रहे हैं, मूकाम्बिका देवी के मन्दिर।"

जब हम जंगल के बीच से गुज़र रहे थे तो वेंकप्पा ने बताया कि वह जंगल चीतों से भरा हुआ था और बड़े बाबा तथा बाबाजी ने कोल्लूर जाते समय पैदल यह जंगल पार किया था। मूकाम्बिका का मन्दिर बहुत तेजोदीप्त शक्तिपीठ है। जैसे ही मैंने अन्दर प्रवेश किया वहाँ की शक्ति के प्रभाव से मैं झूमने-सी लगी। जो कुछ मुझे करना था वह तो मैं कर रही थी पर मेरा मन एकदम स्थिर था। यह स्थिति मेरे साथ पूरे दिन रही।

मेंगलूर के पास बाबाजी और बड़े बाबा जहाँ-जहाँ गये थे उन सभी पवित्र स्थलों के दर्शन करने के बाद हम बंगाल की खाड़ी वाले तट पर स्थित मद्रास चले गये।

बाबाजी और गुरुमाई के साथ यात्राओं पर जाने से मुझे यह पता था कि पवित्र स्थल कैसे होते हैं। वहाँ निश्चित ही कुछ होता है। गुरुदेव सिद्धपीठ इस धरती के पवित्रतम स्थलों में से एक है। यह शक्ति की एक ऐसी भट्टी है जिसमें हमारे सारे पाप जल जाते हैं।



शिव की ज्ञानवापी

'सहस्त्रों वर्ष पूर्व माल्यकेतु नाम का एक राजा था। उसके राज्य में सुख की कोई कमी न थी। स्वयं उसका जीवन भी सुख सन्तोष से पूर्ण था। अद्वितीय सुन्दरी व पतिव्रता पत्नी थी, कलावती। तीन उत्तम सन्तान थीं।

एक दिन उत्तर भारत का एक चित्रकार एक अनुपम परन्तु विचित्र कलाकृति लेकर राजा के दरबार में आया। राजा उस कलाकृति को समझ न सका। उसने वह चित्र अपनी पत्नी कलावती को दिखाया। वह कलाकृति देखते ही रानी भावविभोर हो गयी। सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया। उस कलाकृति को अपने हृदय से लगा एकान्त कोने में न जाने कितनी देर स्तब्ध बैठी रही। कभी तो उस चित्र को एकटक निहारती — कभी हृदय से लगा मौन हो जाती। सोचती, "आज मेरे भगवान विश्वनाथ इस चित्र रूप में मेरे पास आये हैं।" भगवान का वह चित्र पाकर उसे अपनी कोई सुध-बुध न रही।

थोड़े समय बाद उसने पूरे चित्र को ध्यान-पूर्वक देखा। एक स्थान पर जाकर उसकी दृष्टि थम गयी। अरे, भगवान के दक्षिण भाग में ज्ञानवापी है। पुराणों में महादेव को जिन आठ मूर्तियों से युक्त बताया जाता है, उनमें से उनकी जलमयी मूर्ति यह ज्ञानवापी ही है। ज्ञानवापी को देखते ही कलावती की पूरी देह में रोमाञ्च हो आया। मस्तक पर स्वेद कण उभर आये। नेत्रों से आनन्दातिरेक में आँसू बहने लगे। देह में हिलने-डुलने की भी सामर्थ्य न रही। उस क्षण वह कहीं और चली गयी थी। हाथ से कब वह चित्रपट छूट कर गिर पड़ा पता न चला।

रानी कलावती की यह विचित्र स्थिति देखकर सभी दासियाँ घबरा गयीं। क्या करें, समझ न पा रहीं थीं। तभी उनमें से एक ने कहा, "मैं जानती हूँ, उन्हें क्या हुआ है। जिस चित्र को देखकर वे ऐसी हो गयी हैं उसी चित्र का पुनः स्पर्श कराने से स्थिर हो जायेंगी।" सखी बुद्धिशरीरिणी ने कहा, "महारानी अपने जिस इष्ट के दर्शन से आप अपनी सुध-बुध खो बैठी हैं, पुनः एक बार उनके दर्शन करें।" उस चित्र के स्पर्श से रानी की मूर्च्छा दूर हो गयी और उन्होंने एक बार फिर ज्ञानवापी के दर्शन किये। उसके दर्शन करने से उन्हें अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया था। अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त अपनी सखियों को सुनाते हुए कलावती बोली, "पूर्वजन्म में मैं ब्राह्मण की कन्या थी और काशी में विश्वनाथ मन्दिर के निकट ज्ञानवापी के तट पर खेला करती थी। आज ज्ञानवापी को देखने पर मुझे पूर्वजन्म का स्मरण हो आया।" कितने ही घण्टे वह सभी को ज्ञानवापी के विषय में बताती रही।

कलावती के मुख से यह सब सुन सभी सखियाँ भी वहाँ जाने को लालायित हो उठीं। इस पवित्र पावन महातीर्थ के दर्शन करने की सभी के मन में तीव्र इच्छा जाग उठी।

रानी कलावती ने माल्यकेतु से सखियों के साथ काशीपुरी जाने की प्रार्थना की। माल्यकेतु ने कहा, "देवी! मैं भी तुम्हारे साथ काशी चलता हूँ। महान तीर्थस्थली के दर्शन का अवसर बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है।"

राजा माल्यकेतु ने अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बिठाया और पत्नी सहित काशीपुरी

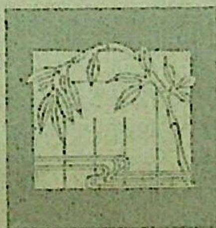
की ओर प्रस्थान किया। काशीपुरी के दर्शन करने से राजा तो धन्य-धन्य हो उठे। राज दम्पत्ति ने मणिकर्णिका में स्नान कर, विश्वनाथ जी की परिक्रमा की और धन दान दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल वे ज्ञानवापी के दर्शन के लिए गये। वहाँ पर भी भक्तिभाव से उसकी महिमा को समझते हुए माल्यकेतु व कलावती ने उस तीर्थस्थल का यथोचित सम्मान किया और उसके बाद शेष सारा जीवन वहीं तपस्या करते हुए व्यतीत करने लगे।

एक दिन भोर में दम्पत्ति स्नान करके ज्ञानवापी में ध्यान के लिए बैठे थे तभी एक तपस्वी वहाँ आये, आकर उन्होंने उनको विभूति देते हुए कहा, "आज तुम्हारे लिए बहुत शुभ दिन है। तुम दोनों को तारक मन्त्र का उपदेश प्राप्त होगा।" उस तपस्वी के इतना कहते ही आकाश से एक दिव्य विमान उतरा। भगवान शिव उसमें विराजमान थे। पति-पत्नी ने नम्रता पूर्वक श्री चरणों में प्रणाम किया। कहा जाता है कि भगवान ने स्वयं दोनों को ज्ञान का उपदेश दिया। भगवान ने साक्षात, ज्ञानवापी की पवित्र भूमि पर, पधार कर कलावती व माल्यकेतु को परम सत्य के दर्शन कराये।

तभी से ज्ञानवापी तीर्थ का महत्त्व अधिक हो गया है। ऐसा कहा जाता है कि एक समय ईशानकोण के राजा ईशान घूमते हुए काशी आ पहुँचे। यहाँ उन्होंने भगवान शिव के विशाल ज्योतिर्लिङ्ग के दर्शन किये। यह ज्योतिर्लिङ्ग चारों ओर से सुनहरे प्रकाश से जगमगा रहा था। सभी देवता, ऋषि-मुनि इसकी पूजा नियमित करते थे। ज्योतिर्लिङ्ग देखकर राजा ईशान के मन में स्वच्छ शीतल जल द्वारा उसे स्नान कराने की इच्छा हुई पर आसपास कहीं स्वच्छ जल न था। उन्होंने लिङ्ग के दक्षिण में त्रिशूल से एक कुण्ड खोदा। कुण्ड से जल प्रकट हुआ। वह जल अत्यन्त शीतल, ज्ञान-स्वरूप, पापों का नाश करने वाला, सन्त महात्माओं के हृदय की भांति निर्मल, भगवान शिव के नाम की भांति पवित्र, अमृत के समान स्वादिष्ट था। ईशान ने उस शीतल जल से महालिङ्ग को स्नान कराया।

ईशान के द्वारा इस भाँति स्नान कराये जाने पर भगवान शिव स्वयं वहाँ प्रकट हुए। उन्होंने ईशान से कहा, "मैं तुम्हारे इस पवित्र व महान कर्म से अति प्रसन्न हूँ। तुम कोई वरदान माँगो।" ईशान ने भगवान के सामने नतमस्तक हो कहा, "प्रभो! यदि आप मुझसे सचमुच ही प्रसन्न हैं और मुझे कुछ देना चाहते हैं तो यह वरदान दीजिए कि यह अनुपम तीर्थ, जहाँ आप साक्षात् हैं, आपके नाम से प्रसिद्ध हो।" विश्वनाथ ईशान की इस प्रार्थना से हर्षित हो बोले, "तीनों लोकों में जितने भी तीर्थ हैं उनमें यह शिवतीर्थ सर्वश्रेष्ठ होगा। शिव ज्ञान है और यह ज्ञान, इस कुण्ड से द्रव रूप में प्रकट हुआ है अतः यह तीर्थ ज्ञानवापी के नाम से प्रसिद्ध होगा। इसका स्पर्श करने मात्र से व्यक्ति अपने सभी पापों से मुक्त हो जायेगा।"

इसे ही शिवतीर्थ कहा गया है। यही ज्ञानतीर्थ, तारकतीर्थ और मोक्षतीर्थ भी कहलाता है। ऐसा कहा जाता है कि इसके स्पर्श-स्नान-पान से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है।



बोल-अनमोल

बाबा मुक्तानन्द के साथ प्रश्नोत्तर

जब मैं तीर्थयात्रा पर जाता हूँ तो तीर्थस्थलों के प्रति, मन्दिरों के प्रति और मूर्तियों के प्रति आदर और श्रद्धा दिखाने का सबसे उत्तम तरीका क्या है?

बाबाजी : तुम्हें यह समझना चाहिए कि तीर्थ स्थानों का प्रादुर्भाव कैसे होता है। प्रायः कोई महान सन्त लम्बे समय तक वहाँ रहते हैं — अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक — और उन्होंने वहाँ तपस्या की होती है। अपनी तपस्या से वह उस स्थान को दिव्य बनाते हैं और उनका शरीर वहीं अन्तिम विश्रान्ति पाता है और इस तरह से एक स्थान पवित्र बनता है। इसी तरह सभी महान तीर्थ स्थानों का प्रादुर्भाव हुआ।

जब भी तुम किसी मन्दिर में जाते हो या एक मूर्ति के सम्मुख खड़े होते हो, तुम्हें उस मूर्ति को अपनी ही आत्मा का अंश समझना चाहिए और सबसे अच्छी बात यह है कि उस मूर्ति में भी अपने इष्ट को देखना और उसके प्रति भक्ति का अनुभव करना। इस संदर्भ में मैं तुम्हे श्री रामकृष्ण परमहंस के साथ क्या हुआ यह बताता हूँ। एक बार वे अपने कुछ भक्तों के साथ तीर्थयात्रा के लिए निकले। उनकी अपनी आराध्या थीं भगवती काली। वे काशी गये। काशी नगरी के कुल देवता हैं शंकर या विश्वनाथ। शंकर की मूर्ति के सामने पहुँच कर उन्होंने मूर्ति का आलिंगन करते हुए कहा, "हे माँ काली, आपका स्वरूप कितना दिव्य है! यहाँ आप शंकर के रूप में प्रकट हुई हैं।" उन्होंने देवी को प्रणाम किया। तत्पश्चात वे मथुरा गये। वहाँ कृष्ण की मूर्ति के सामने खड़े होकर बोले, "माँ, आज आप मेरे सामने कृष्ण के रूप में प्रकट हुई हैं।" और उन्होंने उसी प्रेम से मूर्ति का आलिंगन किया।

इसलिए तुम जहाँ भी जाओ वहाँ अपने ही इष्ट को देखो। किसी को भी अपने इष्ट से भिन्न मत देखो। तुम्हें वहाँ कुछ करना नहीं है, केवल हर रूप का सम्मान कर, अपने अन्तर में प्रार्थना करनी है।

आध्यात्मिक तीर्थयात्रा का क्या उद्देश्य होता है? एक महान संत के स्थान पर जब यात्रा के लिए जाते हैं तो क्या होता है?

बाबाजी : एक पवित्र स्थान में, अतीत की महत्वपूर्ण घटनाओं के चिह्न वर्तमान में भी मौजूद रहते हैं; परन्तु इसका अनुभव करने के लिए व्यक्ति में सामर्थ्य होनी चाहिए, पवित्रता होनी चाहिए, वरना, वह बम्बई जाने के समान ही होता है।

तुम जहाँ भी प्रतिदिन ध्यान, धुन, पूजा करते हो, वही स्थान तीर्थ है। हर तीर्थस्थान में कभी न कभी बिलकुल यही किया गया है। तुम्हारे कार्यों के सूक्ष्म स्पन्दन वातावरण में व्याप्त रहते हैं। प्रतिदिन पूजा तथा शिस्तबद्ध जीवन, शक्ति-निर्माण करता है, जिससे एक मुमुक्षु को बहुत सहायता मिलती है। अलग-अलग पवित्र स्थानों में, अच्छे कार्यों के स्पन्दन सतत व्याप्त रहते थे। पर आज ऐसा नहीं है। आजकल वे चिह्न, वे स्पन्दन सब समाप्त हो गये हैं क्योंकि तीर्थ यात्रा केवल एक रूढ़ि मात्र रह गयी है। उन स्थानों का अस्तित्व महान सन्तों के कारण है। उदाहरण के लिए गणेशपुरी को ही लो, बाबा नित्यानन्द के यहाँ आने से पूर्व भूमि श्मशान की तरह थी। जब वे यहाँ रहने लगे, यह पवित्र बन गयी और एक पूरा गाँव ही बस गया।

अपनी किसी आन्तरिक कमज़ोरी के सामने आने पर कैसी मन की वृत्ति रखनी चाहिए? क्या तब तक उससे लड़ना चाहिए जब तक उस पर विजय न प्राप्त करलें या सब कुछ गुरु की कृपा पर छोड़ देना चाहिए?

बाबाजी : हरिद्वार में बहुत बड़ा कुम्भ मेला लगता है और बहुत से ऋषि-मुनि, आस्तिक लोग, स्वयं को पवित्र करने के लिए गंगाजी में स्नान करते हैं। लाखों लोग इस मेले में आते हैं। एक दिन काफी सारे लोग, गंगाजी में स्नान करने के बाद वापिस लौट रहे थे। गंगा में स्नान करने के बाद जब लोग वापिस लौटते हैं तो ज़ोर-ज़ोर से कहते हैं, "हर, हर, हर महादेव!" शिव और पार्वती दूर से इस भीड़ को देख रहे थे। पार्वती ने शिव से कहा, "इन सभी लोगों ने गंगा स्नान किया है और इस तरह उनके सभी पाप नष्ट हो गये हैं। अब वे आपके दर्शन के योग्य हो गये हैं। यहाँ बैठने की बजाय क्या आपको वहाँ जाकर उन्हें दर्शन नहीं देने चाहिए?" शंकर ने पूछा, "उनमें से किसने स्नान किया है?" पार्वती ने आश्चर्य से कहा, "यह बहुत विचित्र प्रश्न है। आपको क्या मालूम नहीं कि लाखों लोगों ने यहाँ स्नान किया है?"

उन्होंने कहा, "इस स्नान की कोई विशेषता नहीं है। ये सभी लोग अपने घर में प्रतिदिन स्नान करते हैं। लेकिन हम उन लोगों को जाकर दर्शन देंगे जिन्होंने सच्चा स्नान किया है। मैं एक वृद्ध का वेष धर के सड़क के किनारे लेट जाऊँगा। तुम मेरे पास बैठकर रोने लगना और बराबर आते-जाते लोगों से कहती रहना, 'मेरे पति बहुत वृद्ध हैं, बहुत बीमार भी। केवल एक ही तरीके से इनकी रक्षा की जा सकती है। इस भीड़ में जो भी पापमुक्त हो वह इनके लिए गंगाजल ले आये।'" वे दोनों अपने-अपने वेष में सड़क के किनारे पहुँच गये। पार्वती ज़ोर-ज़ोर से रोने लगीं। वे लोग जो स्नान करके वापिस लौट रहे थे उनसे उनके रोने के कारण पूछने लगे।

उन्होंने कहा, "तुम सभी गंगा स्नान करके वापिस लौट रहे हो, तो पूरी तरह पापमुक्त व पवित्र हो गये होंगे। अतः कृपा करके थोड़ा गंगा जल लाकर दो जिससे मेरे पति की प्राण रक्षा हो सके । लेकिन एक बात का ध्यान रखना कि यदि तुम लेशमात्र भी अपवित्र हो तो मेरे पति को एक बूंद भी पानी देते ही केवल उनकी ही नहीं वरन् तुम्हारी भी मृत्यु हो जायेगी।" वहाँ एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो पूरी तरह पवित्र हो। उन्होंने अपने शरीर को ही धोया था; किसी ने भी अपने पाप नहीं धोये थे। बहुत से लोग उधर से निकले। अन्त में एक व्यक्ति उनके पास आया। उसने पार्वती से पूछा, "माँ, क्या बात है?"

"कितने लोग इधर से निकले और मैंने उन सभी से पूछा कि क्या उनमें से कोई भी ऐसा है जो पूर्ण पवित्र हो, पर मुझे एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला।"

इस व्यक्ति ने कहा, "माँ, हो सकता है मैंने अतीत में बहुत पाप किये हों परन्तु जैसे ही मैंने गंगा स्नान किया मेरे सभी पाप धुल गये और उसके बाद से मैंने एक भी पाप नहीं किया है। इसलिए मैं उन्हें पानी पिलाऊँगा।"

तुम्हें यह याद रखते हुए कि तुम एक सिद्ध के घर में हो, पूरी तरह भयमुक्त हो जाना चाहिए। तुम अब एक पवित्र आश्रम में हो, एक पवित्र मन्दिर में और तुमने अतीत में जो कुछ भी किया है वह सब मिट गया है। तुम्हें केवल वर्तमान पर ध्यान देना चाहिए। लेकिन, यदि तुम अपने पुराने पापों को यहाँ पर भी करते रहोगे, तो किसी भी तरह अपने को स्वच्छ नहीं कर सकते। तुम्हारे अन्दर यह समझ आनी चाहिए: "मैं गुरुगीता करता हूँ, ध्यान करता हूँ अतः मेरा हृदय सभी पापों से मुक्त हो गया है।"

चमकीले पड़ाव

वामन ग्रेग

बीस वर्ष पूर्व भारत की आध्यात्मिकता से खिंचे मैं और मेरी पत्नी एनी यहाँ आये। एक तेरह वर्ष पुरानी गाड़ी में यहाँ आने में हमें तीन सप्ताह लगे।

हमें ऐसा लग रहा था कि भारत में हमें कुछ ऐसा मिलेगा जो पश्चिम में नहीं मिला है। यहाँ पहुँचकर हमने ताजमहल देखा, हिमालय की यात्रा की, बनारस गये... पर हमें मालूम नहीं था कि हम क्या खोज रहे हैं। नासिक के पास हमने एक गैराज के मालिक से पूछा कि आराम करने की अच्छी जगह यहाँ आस-पास कौन सी है। उसने कहा, "वज्रेश्वरी में गरम पानी के सोते हैं। आपको वहाँ जाना चाहिए।"

वज्रेश्वरी पहुँचने पर लोगों ने हमसे कहा, "आपको यहाँ थोड़े ही रुकना है! निश्चित ही आप गणेशपुरी आश्रम जाना चाहेंगे।" हमें तो आश्रम के विषय में कुछ मालूम न था। परन्तु जैसे ही एनी आश्रम के बाहर गाड़ी से उतरी, बोली, "मैं यहीं रहूँगी। मुझे नहीं मालूम क्यों, लेकिन यह जगह मुझे अपनी ओर खींच रही है।"

हम अन्दर नहीं गये क्योंकि बाहर से ऐसा लगता था जैसे वह किसी का निजी घर हो। हमारे साथ हमारा एक मित्र भी था, उसकी दृष्टि पास ही की चाय की दुकान पर पड़ी। वह चाय पीने अन्दर चला गया और हम गाड़ी में बैठ कर उसका इन्तज़ार करने लगे।

हमारे सामने ही आश्रम का बोर्ड लगा था। एक आश्चर्य की बात यह थी कि हमारे चारों ओर कहीं हरियाली नहीं थी पर यह आश्रम हरा-भरा था।

हमारा मित्र चाय की दुकान से बाहर आकर बोला, "मैं एक आश्रमवासी से मिला और उससे इस स्थान के बारे में पूछा। उसने कहा, 'यहाँ हम बहुत सेवा करते हैं।'" हमारा मित्र सेवा नहीं करना चाहता था। अतः हमने समुद्र के किनारे कहीं जाने का निश्चय कर लिया। अरब सागर के किनारे बहुत ही सुन्दर 'बीच' हमें मिल गया और यहीं प्रारम्भ हुआ परिवर्तनचक्र। हम प्रतिदिन ध्यान करने लगे, थोड़ा पढ़ते भी। इन प्रयासों से हमें एक बात जो स्पष्ट हुई वह यह थी कि आन्तरिक यात्रा पर चलने के लिए हमें किसी पहुँचे हुए मार्गदर्शक की आवश्यकता है। जितनी बार मैं ध्यान के लिए बैठता यह नाम बार-बार मेरी आँखों के सामने आता, "श्री गुरुदेव आश्रम" — यह वही नाम था जो हमने चाय की दुकान के बाहर गाड़ी में बैठे हुए देखा था। हमने सोचा, "चलो, चलकर देखते हैं गुरु वहाँ पर हैं या नहीं।" कुछ दिन बाद हम गणेशपुरी वापिस पहुँच गये।

वहाँ पहुँचकर हमें मालूम नहीं था कि क्या होगा। किसी ने हमें नित्यानन्द मन्दिर में बिठा दिया पर यह नहीं बताया कि वहाँ बैठकर हम किस की प्रतीक्षा कर रहे हैं। फिर किसी ने कहा, "क्या आप बाबाजी से मिले हैं?" हमें तो यह भी नहीं मालूम था कि बाबाजी कौन हैं। अतः वे हमें बाबाजी से मिलाने ले गये। बाबाजी कोर्ट यार्ड में बैठे कुछ लोगों से बात कर रहे थे। किसी ने हमारा उनसे परिचय कराया। उस प्रथम भेंट में ही मुझे भीतर से यह लग रहा था कि उन्हें हमारे बारे में सब मालूम है।

बाबाजी ने सीधे मेरी ओर देखा। मैं स्तम्भित सा सोच रहा था कि बाबाजी उस पहली ही दृष्टि में यह जान गये थे कि मैं कौन हूँ — पूरी तरह मुझे यह जानकर कुछ परेशानी नहीं

हुई, बस उन्होंने जिस दृष्टि से मुझे देखा था उससे मैं अभिभूत हो गया था। उन्होंने कहा, "नीचे गाँव में जाकर रहो।" एक किलोमीटर दूरी पर यह गाँव है। बाबा ने हमें सभी कार्यक्रमों में आने को कहा, शाम की आरती में भी आने का निमन्त्रण दिया। हमें बहुत अच्छा लगा। पर आश्रम के भीतर जाने की हमारी बहुत इच्छा थी।

मुझे याद है किसी ने मुझसे कहा, "आश्रम के काम में संलग्न होना अच्छा है। यदि आपका मन हो तो आप भी हाथ बँटा सकते हैं।" हमने यह सोचा तक नहीं था कि हम भी सेवा कर सकते हैं। सच, कितना अद्भुत था यह! हमारी पहली सेवा थी, 'सामने के पहाड़ को साफ करना।' तीसरे पहर तक काफी हवा चलने लगती है और यदि आप पत्तियाँ साफ करना चाहें तो सम्भव नहीं हो पाता। हवा से वे बार-बार वापिस आ जाती हैं। परन्तु यह करने से मुझे बहुत अधिक शक्ति का अनुभव होता था। मैंने निश्चय कर लिया जितनी जल्दी हो सकेगा मैं इस पहाड़ को साफ करूँगा। मुझे ऐसा लग रहा था कि मैं कुछ देना चाहता हूँ। हमें किसी ने गुरु के विषय में कुछ नहीं बताया था — गुरु क्या करते हैं, उनकी सर्वज्ञता, उनकी उपस्थिति में निहित गुण आदि। किसी ने हमसे बहुत बात भी नहीं की — उन दिनों लोग मौन रहते थे। जब हम पहली बार बगीचे में सेवा करने गये, मुझे ऐसा महसूस हुआ कि जैसे बाबाजी हमें देख रहे थे। यद्यपि हमें ऐसा अनुभव हुआ परन्तु यह समझने में कि बाबाजी एक महापुरुष हैं हमें काफी समय लगा। पर हमारे मन में इस बात में तनिक भी संशय नहीं था कि यही हमारे लिए सही स्थान है।

एनी को बाबाजी से शक्तिपात दीक्षा मिली। उसने कहा कि उसे अपने भीतर एक अद्भुत आनन्द का स्रोत फूटता महसूस हुआ। एक शाम मैं बैठा था तभी मुझे एनी के ज़ोर-ज़ोर से हँसने की आवाज़ सुनायी पड़ी। उसकी आवाज़ सीधे मेरे अन्दर उतरती चली गयी और मैं स्वतः प्राणायाम करने लगा। मैं पूर्ण पद्मासन में स्वतः ही बैठ गया। मुझे तीव्र शक्तिपात बाबाजी से मिला था। आश्रम पूरी तरह शान्त था, घने अन्धेरे में, केवल पूर्ण चन्द्रमा का प्रकाश सर्वत्र छिटका हुआ था। सब ओर एक अवर्णनीय सौन्दर्य बिखरा था।

उसके बाद मुझे समझ में आया कि मैं क्यों ईसामसीह के बारे में पढ़ते-पढ़ते हृदय में एक तीव्र ललक का अनुभव करता था, किसी महापुरुष के चरणों में शीश नवाने की उत्कट आकांक्षा थी मेरे मन में। मुझे गुरुचरणों की शक्ति का अनुभव होने लगा था। जो पवित्रता जो पावनता उन चरणों में निहित है उसका मैं अनुभव करने लगा। जब बाबाजी के चरणों को देखता तो सोचता, "कितने सुन्दर हैं, गुरु के चरण कमल!" ध्यान शुरू करने के बाद, विशेष कर बाबाजी से 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र प्राप्त होने पर जब भी मैं बाबाजी के समक्ष आता, मेरा मन स्थिर हो जाता।

कुछ सप्ताह बाद बाबाजी ने मुझे बुलाया और कहा, "घर वापिस जाकर ध्यान केन्द्र चलाओ। तुम्हें कभी चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। मेरी कृपा हमेशा तुम्हारे साथ रहेगी।"

जब हम आश्रम से जा रहे थे उस समय बाबाजी हॉल में खड़े थे। बाबाजी के तेजस्वी रूप को मैं एकटक देख रहा था। मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं, बाबा से निकलते प्रकाश को, उनकी तेजस्विता को मैं तब भी देख सकता था। यह मेरे लिए पूर्ण परिवर्तनकारी था, क्योंकि मुझे समझ में आ रहा था कि यह दृष्टान्त मुझे अन्दर से हो रहा है। इंग्लैंड से इतनी लम्बी यात्रा कर हमें मालूम चला था कि यात्रा तो भीतर करनी होती है।

जब हम जाने के लिए तैयार हो रहे थे। बाबाजी ने कहा, "आने का एक समय होता है, जाने का एक समय होता है।" मैंने उनके चरणों में प्रणाम किया। यही है मेरे गुरु चरणों की तीर्थ यात्रा।

एक यात्रा–आत्मा से आत्मा तक

गुरुमाई चिद्विलासानन्द

बड़े प्रेम और सम्मान से सबका हार्दिक स्वागत।

कितने ही धर्मग्रन्थों में हम पढ़ते हैं कि भगवान कहते हैं, "मैं ही पथ हूँ।" अपने अज्ञान के कारण हम इस उक्ति का ग़लत अर्थ लगाते हैं। जब वे "मैं" कहते हैं तो वे किसी व्यक्ति के विषय में नहीं कह रहे हैं — वहाँ "मैं" का अर्थ है परमात्मा का शुद्धातिशुद्धस्वरूप। हम इस उक्ति को तभी सही रूप में समझ सकते हैं जब हम पूरी तरह सत्य में प्रतिष्ठित हो चुके होते हैं। अन्यथा यह होता है कि हम इस उक्ति की व्याख्या और टीका-टिप्पणी में ही उलझ कर रह जाते हैं। कितनी ही बार टीकाएँ लिख दी जाती हैं पर उनका उद्भवस्थान सत्यानुभूति नहीं होता। जब टीकाकार ने स्वयं ही सत्य का अनुभव न किया हो तो उन टीकाओं को पढ़कर उनके पीछे चलना ऐसा ही है जैसे अन्धा अन्धे को राह दिखाये।

इसलिए हर व्यक्ति को स्वयं सत्य का अनुभव करना चाहिए। चाहे वह बड़ा अनुभव हो या छोटा! सत्य की एक झलक भी यदि हमें दिखायी दे जाये तो वही हमारा मार्ग-दर्शन कर सकती है।

एक महान् सन्त ने कहा है; 'तुम क्यों भगवान को यहाँ-वहाँ ढूँढते हो? तुम सदा रोते-चिल्लाते रहते हो, हे भगवान, हे भगवान, हे भगवान, तुम कहाँ हो?'

भगवान को ढूँढने का यह तरीका ग़लत है। भगवान का कोई नाम नहीं है। तुम भगवान को किसी विशेष समय, किसी विशेष स्थान पर बैठा हुआ नहीं पाओगे। यदि तुम उसे अपने हृदय में भजते हो तो वह तुम्हारे मन-वाञ्छित रूप में ही तुम्हें दर्शन दे देगा। इसे ही कहते हैं आत्मा पर ध्यान लगाना। आत्मा, वह नन्हा, अहंपूर्ण "मैं" नहीं है जिसे हम सतत हृदय से लगाये रहते हैं। उसका अर्थ है शुद्धातिशुद्ध आत्मा। जब कहा गया, "मैं ही पथ हूँ।" तो वहाँ "मैं" उसी आत्मा के लिए प्रयुक्त हुआ है। जब हम परमात्मा के सम्पर्क में आते हैं तो हमें आनन्द की अनुभूति होती है। ऐसा नहीं है कि हमने पहले से सोच रखा हो कि आनन्द कैसा होना चाहिए और हम कल्पना में उस आनन्द को पा लेते हैं। नहीं; वह आनन्द एक सच्चा अनुभव है, एक परिपूर्ण प्रशान्ति है।

सन्त फ्रान्सिस ने कहा है: "जिसे तुम खोज रहे हो, वही खोजने वाला है।" सभी सन्त जो आत्मदर्शी थे, यही कहते हैं, "जिसे तुम देखना

चाहते हो वही तो सचमुच देखनेवाला है।" जब तुम कहते हो, "मैं भगवान को जानना चाहता हूँ," तो वह भगवान ही है जो तुमसे यह कहला रहा है, "मैं भगवान को जानना चाहता हूँ।" जब तुम कहते हो, "मैं ध्यान नहीं कर पाता," तो यह भगवान ही है जो तुमसे कहला रहा है, "मैं ध्यान नहीं कर पाता।"

कभी न कभी वह महान अनुभव हमें हो चुका है। हमें उसकी धुँधली सी याद भी है। यहाँ तक कि जब हम कहते हैं "मैं नहीं जानता कि भगवान क्या है," उसका अर्थ है कि कभी न कभी हम उसे जान चुके हैं। अन्यथा तुम उस ज्ञान की सम्भावना के विषय में कैसे सोच सकते हो। हमारे पास एक कलम था, तभी तो हम कहते हैं, "पता नहीं मेरा कलम कहाँ गया!" यदि तुम्हें भगवान की अनुभूति कभी भी नहीं हुई है तो तुम यह नहीं कह सकते, "मैं नहीं जानता कि भगवान क्या है।"

जिसे तुम खोज रहे हो, वही खोजने वाला है। इस सत्य पर मनन करो। सोचो कौन खोज रहा है? कौन देख रहा है? वह देख रहा है जिसकी शक्ति से तुम देख रहे हो जो तुम्हें दिखा रहा है। तुम्हें तो, बस, केवल इतना करना है कि तुम उसे सही स्थान पर देखने या पाने का यत्न करो।

एक बूढ़ी स्त्री की सुई खो गयी। वह बाहर आकर सड़क के लैम्प के नीचे उस सुई को खोजने लगी। बेचारी बड़ी देर तक सुई को खोजती रही। आखिर, एक आदमी ने उससे पूछा, "क्या ढूंढ रही हो? क्या खो गया?"

"सुई खो गयी है। मिल ही नहीं रही!"

"कहाँ खोयी सुई?"

"घर में।"

"तो तुम यहाँ सड़क के लैम्प के नीचे क्यों ढूँढ रही हो?"

स्त्री ने उत्तर दिया, "क्योंकि घर में अँधेरा है। यहाँ लैम्प के नीचे उजाला है।"

यदि तुमने सुई को घर में खोया है और तुम उसे सड़क पर ढूँढ रहे हो, तो कुछ न कुछ गड़बड़ है। सत्य की अनुभूति को तुमने कहाँ खोया है? यदि तुमने उस अनुभूति को अपने अन्दर ही खोया है और तुम उस सत्य को बाहर खोज रहे हो तो ये दो बातें ठीक जगह पर नहीं बैठतीं। तुम्हें सत्य को अपने अन्दर ही खोजना चाहिए।

"जिसे तुम खोज रहे हो, वही खोजने वाला है।"

एक जिज्ञासु गया एक गुरु के पास। बोला, "मुझे दीक्षा दीजिये।"

गुरु ने पूछा, "तुमने भोजन कर लिया है?" उत्तर था, "हाँ।"

"तो जाओ, अपने बर्तन को साफ करो।"

जिज्ञासु ने सत्य को पकड़ लिया। बस, इतनी-सी बात से! आत्मदर्शन किसी भी समय हो सकता है। उसके लिए लम्बे-चौड़े व्याख्यानों को सुनना आवश्यक नहीं है, और न कठोर तपस्याओं की ज़रूरत है। उसका समय है। जब समय आ गया, तो आ गया। वह होना

भगवान सर्वत्र विद्यमान है
फिर भी हम सब को
यह अनुभव हर समय नहीं होता।
हर एक का एक स्थान होता है,
एक समय होता है।

गुरुमाई चिद्विलासानन्द



है, तो होना है। जब उसकी अनुभूति होती है, तो वह हो जाती है। "जिसे तुम खोज रहे हो, वही खोजने वाला है।"

श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है:

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतः स्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ, सत्येनैनं तपसा योनुपश्यन्ति।।

"जैसे तिलों में तेल है, दूध में मक्खन है, स्रोत में पानी है, और लकड़ी में अग्नि है, उसी प्रकार आत्मा, वह परम सत्य हमारे अन्तर में है, वह मिलेगा यदि हम उसे सच्चाई और लगन से खोजेंगे।"

जब तक तुम इस मिथ्या अहंकार और अभिमान से लिपटे रहोगे कि तुम बहुत कुछ जानते हो तब तक तुम कुछ भी नहीं जान पाओगे। बहुत कुछ जानने का दावा, झूठा अभिमान है। जब तुम सोचते हो कि तुम "नहीं" जानते तब तुम्हें सत्य की समझ है। यह आत्मविरोधी उक्ति है, पर यही सच्चा अनुभव है। इसलिए सत्य को अपने अन्तर में खोजो। मन, बुद्धि और शरीर के शुद्धिकरण के पश्चात् उस सत्य की प्राप्ति हो सकती है। चाहे-जैसे भी उसे पाने का प्रयत्न करो, पर करो श्रद्धा के साथ, निष्ठा के साथ और भक्ति के साथ।

ज्यों-ज्यों हम अपने अन्तर के सत्य में अधिक से अधिक प्रतिष्ठित होते जायेंगे, उतना ही हम दूसरों के अन्दर भी उसे देख सकेंगे।

एक शैवमत — प्रतिपादक ग्रन्थ है, "महार्थमञ्जरी।" उसमें कहा गया है:

हृदयस्थान प्ररूढो विमर्शकल्पद्रुमो महाशाखः।
पुष्प्यति भोगश्रियं फलति च निष्कलं सुखोत्सवालोकम्।।

शक्तिशाली शाखाओं वाला, चैतन्यस्वरूप, स्वर्गीय वृक्ष पहले से ही हृदय-गुहा में फल-फूल रहा है। आह्लाद का दमकता प्रकाश इस का फूल है — और अमिश्रित प्रसन्नता का अबाध समारोह इसका फल है।

यदि सब कुछ हमारी इच्छानुसार हो रहा है तो अन्य सभी लोग बहुत अच्छे हैं और हम प्रसन्न हैं। पर यदि काम हमारे मन के अनुसार नहीं हो रहे हैं, और वे अपने ही हिसाब से चल रहे हैं, तो हम अप्रसन्न हैं। इसे कहते हैं "मिश्रित प्रसन्नता" क्योंकि हम उतने ही प्रसन्न होते हैं जितना हमारा अहं किसी विशेष समय हमें अनुभव कराता है।

अमिश्रित प्रसन्नता इसे कहते हैं: यदि सब कुछ हमारी इच्छानुसार हो रहा है, तो हम प्रसन्न हैं और हम तब भी प्रसन्न हैं जब सब कुछ हमारी इच्छानुसार नहीं हो रहा है। एक कहावत बहुत सच्ची है: "अपने मन कछु और है, कर्त्ता के मन कछु और।" हमें यह समझना चाहिए कि यदि कुछ हमारी इच्छानुसार नहीं हो रहा है तो इसमें दैव का हाथ है।

यदि हम इस सत्य को स्वीकार नहीं करेंगे, तो हमें बहुत दुःख झेलना पड़ेगा। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि हम हाथ पर हाथ रखे, बैठे रहें और स्व-प्रयत्न न करें। निःसन्देह, हम फिर भी प्रयत्न करते हैं, और कठोर परिश्रम करते हैं। हम अकर्मण्य हो कर एक लुगदी नहीं बन जाते — जैसे पिसे हुए आलुओं की लुगदी होती है। हम फिर भी शक्ति के

साथ जमे रहते हैं, दृढ़ बने रहते हैं और जी तोड़ कर लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं। और यही है, अमिश्रित प्रसन्नता। जीवन में बाधक स्थितियाँ आने से हमारी प्रसन्नता में कोई कमी नहीं आती।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है:

स्वदेहमरणिं कृत्वा, प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासादेव पश्येन्निगूढवत्॥

"अपने शरीर को छड़ी बनालो भगवन्नाम को दूसरी छड़ी बनालो ध्यान में दोनों को परस्पर रगड़ो; तुम्हें छिपे हुए परमात्मा के दर्शन होंगे।"

अब, श्वास-प्रश्वास के साथ, तुम पुनः-पुनः उन्हें रगड़ोगे तो ज्ञान की अग्नि दहक उठेगी। तुम यह अभ्यास हर समय कर सकते हो। कुछ लोग कहते हैं, "मेरे पास ध्यान के लिए समय नहीं है।" पर एक दिन में कितने ही छोटे-मोटे अवसर आते हैं। ऐसा तो है नहीं कि हम दिन के प्रत्येक क्षण में व्यस्त ही रहते हों। हम चाय के प्याले के लिए कम से कम दस मिनट प्रतीक्षा करते हैं। वह समय है भगवान को स्मरण करने का। या हम बस की प्रतीक्षा करते हैं, यही वह छोटा-सा अवसर है, वह थोड़ा-सा समय। हम किसी से बात करना चाहते हैं, पर टेलीफ़ोन खाली नहीं है, वह भी एक अवसर है। और तो और, जब हम सोने की तैयारी करते हैं, तब भी अवसर होता है।

एकाग्रता। देखो, तुम्हारा इन सत्सङ्ग कार्यक्रमों में आना और अन्दर में शान्त हो जाना — यह अपने में एक बहुत महत्वपूर्ण बात है। अतः दिन प्रतिदिन एकाग्रता का निरन्तर अभ्यास करते रहने से अन्त में पूर्ण एकाग्रता आ जाती है और वही परमात्मा का अनुभव देती है। परमात्मा को अनुभव करने का अर्थ केवल यह नहीं है कि कोई रोग चला जाये या हमें बहुत धन मिल जाये। यह कोई ऐसी केवल एक बात नहीं है। यह तो हमारा सम्पूर्ण अस्तित्व है।

एक था राजा, जिसके पास एक लड़ाकू मुर्गा था। उसने उस मुर्गे के प्रशिक्षक से कहा कि वह उस मुर्गे को अच्छा प्रशिक्षण दे। प्रति दिन राजा उस प्रशिक्षक से पूछता, "क्या मुर्गा तैयार है?"

प्रशिक्षक कहता, "नहीं।"

"क्या वह तैयार है?"

"नहीं।"

अन्त में लड़ाई का दिन आया। राजा ने पूछा, "क्या वह तैयार है?"

प्रशिक्षक ने कहा, "नहीं। वह अब भी कीड़ों की ओर झपटता है।"

एक घण्टे बाद राजा फिर आया और उसने पूछा, "क्या वह तैयार है?"

प्रशिक्षक बोला, "लगभग। अब भी जब वह कोई आवाज़ सुनता है तो गर्दन घुमाता है।"

कुछ घण्टे बाद राजा फिर उधर आया और पूछने लगा, "क्या

मुर्गा तैयार है?"

प्रशिक्षक ने उत्तर दिया, "जी हाँ! बिलकुल।"

राजा ने पूछा, "क्या मतलब है तुम्हारा?"

प्रशिक्षक बोला, "लड़ाई लड़ने के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि मुर्गा पूरी तरह केन्द्रित रहे। अब वह तैयार है और उसे जो करना है वह उस पर पूरी तरह एकनिष्ठ है। लड़ते समय चाहे कितना ही शोर हो, वह गर्दन नहीं घुमायेगा, उसे कितने ही कीड़े दिखायी दें, वह उन पर नहीं झपटेगा। उसका पूरा ध्यान एक बात पर केन्द्रित हो गया है — उसे लड़ना है। अन्य मुर्गे उसकी एकाग्रता देखकर आंतकित हो जायेंगे क्योंकि उसे देखकर वे समझ जायेंगे कि उसे पूरी तरह पता है कि उसे क्या करना है। वह पूरी तरह त्रुटिहीन और बेदाग है। पूरी तरह सावधान।"

जब हम परमोच्च अनुभव की अभिलाषा करते हैं, तो यही स्थिति होती है। वह स्थिति पूर्ण केन्द्रिकरण की स्थिति है। चाहे कुछ भी होता रहे — लोभ, वासना, ईर्ष्या या कोई भी अन्य आवेग हमारा ध्यान नहीं बँटा सकता। हममें इतनी योग्यता होती है कि हम बिना रुके, बढ़ते रहें। हम साथ ही साथ अपना जीवन भी जी सकते हैं और उसी जीवन में हम चरम सत्य की अनुभूति भी कर सकते हैं। तभी हम प्रसन्नता में सत्य देख सकते हैं; हम यन्त्रणा में भी सत्य देख सकते हैं।

इसे ही "अमिश्रित प्रसन्नता" कहते हैं। जब हम प्रत्येक समय अपने शरीर को सत्य-चिन्तन करने के लिए अनुशासित कर लेते हैं तो, हम चाहे सत्य को भूल जायें, पर हमारा शरीर हमें सत्य का स्मरण करा देगा। हम जो कुछ सोचते हैं और जो चिन्तन-मनन हम करते हैं, उसे हमारा शरीर आत्मसात् कर लेता है। तुम चाहो तो इसकी परीक्षा कर सकते हो। यदि तुम भगवान् को भूल भी जाते हो, किन्तु यदि तुमने दिन का एक विशेष समय भगवद्-ध्यान के लिए रख छोड़ा है, तो उस समय तुम्हें कुछ विशेष अनुभूति होगी। अचानक ऐसा लगेगा कि कुछ है जो तुम याद करना चाहते हो, तुम चरम सत्य का स्मरण करना चाहते हो।

इसी कारण, हम अपने शरीर को एक छड़ी बनाते हैं और भगवन्नाम को दूसरी छड़ी। हम भगवन्नाम को बार-बार जपते हैं जिससे संघर्षण हो, जो ज्ञान की अग्नि को दहका देगा।

शान्त-स्तब्ध होने का अर्थ यह नहीं है कि हम लकड़ी के कुन्दे हो जायें। उस स्तब्धता में एक उच्चतर क्रिया है। वह क्रिया अनुशासित है; उस अनुशासन में आनन्द है। अतः वह स्तब्धता एक दिव्य क्रिया है। उस दिव्य क्रिया के फलस्वरूप हम सोच सकते हैं, हम निर्णय ले सकते हैं, हम अनुभव कर सकते हैं और कर्म कर सकते हैं। हमें जो कुछ भी करना है, वह उस दिव्य क्रिया की संगति में करना है। फिर हमें कभी ऐसा नहीं लगेगा कि हम खो गये हैं; हमें ऐसा लगेगा कि हम घर आ गये हैं। और वह घर आने का अनुभव सबसे महान् है; हम अपने घर, अन्तरस्थ परमात्मा के पास, आ जाते हैं।

बड़े प्रेम व सम्मान से सबका हार्दिक स्वागत।

हृदय का तीर्थ

महानन्दा

मन्दिर पर छाये हल्के अन्धेरे को सूर्य की किरणें, जगमगाते प्रकाश से भर रही हैं। एक वृद्ध पास के ही पत्थर निर्मित कमरे में चहलकदमी करता हुआ अपना एकतारा बजाते हुए धुन गा रहा है। धूल के कण, प्रकाश पुञ्ज में तैरते हुए, क्षणांश के लिए रंग-बिरंगे दिखायी देते; लगता मानों इन्द्रधनुष निकल आया हो पर इन सबसे बेखबर वह गायक अपनी मस्ती में डूबा गा रहा है "राम-राम हरे-हरे, कृष्ण-कृष्ण हरे-हरे...।"

सर्वत्र गहन शान्ति व्याप्त है। मैं बैठी प्रातः कालीन पूजा की प्रतीक्षा कर रही हूँ, सोच रही हूँ थोड़ी तस्वीरें लेनी चाहियें, कुछ लिखना चाहिए पर अपनी जगह से हिल भी नहीं पा रही, बस उस स्थायित्व की अनुभूति के आनन्द में डूबी हुई हूँ, शक्ति का तीव्र अनुभव मुझे अन्तर में हो रहा है। अचानक मुझे समझ में आया, इसलिए लोग महाराष्ट्र के इस छोटे से कस्बे, पण्ढरपुर में आते हैं — यह, भगवान विठ्ठल की शक्ति है।

भगवान विठ्ठल। कल रात मैंने उन्हें पहली बार देखा। हाथ कमर पर, मन्दिर की वेदी पर एक छोटे से पत्थर पर मज़बूती से रखे पैर — भगवान का अनोखा रूप। विठ्ठल, विठोबा और पाण्डुरंग — भक्तों ने भजनों के माध्यम से ये नाम अमर बना दिये हैं जिन्हें यहाँ आने वाले तीर्थयात्री गाते रहते हैं। भगवान विठ्ठल की शक्ति ने पन्द्रह सौ वर्षों से आने वाले अनगिनत मुमुक्षुओं के हृदयों का स्पर्श किया है।

भगवान विठ्ठल की प्रेरणा से ही महाराष्ट्र के सन्त कवियों ने दिव्य-प्रेम में डूबी रचनाएँ कीं। सोलहवीं शताब्दी में तुकाराम महाराज ने लिखाः

"पत्थर पर खड़े भगवान के श्री चरणों में ही मेरी पूरी श्रद्धा है।
ज्ञानेश्वर, नामदेव अन्य कितने ही सन्त इसी से मुक्त हो गये हैं,
मैं उन्हीं के पथ का अनुसरण कर रहा हूँ।"

विठ्ठल की ही प्रेरणा थी कि नामदेव व ज्ञानेश्वर महाराज तेरहवीं शताब्दी के अन्त में तीन वर्ष की तीर्थ यात्रा पर निकले। वे सारे महाराष्ट्र में गली-गली, सड़क-सड़क, मस्त प्रभु नाम की धुन गाते रहते। विठ्ठल हर किसी के थेः एक अछूत भी भगवान का नाम गा सकता था। यह उपासना का एक क्रान्तिकारी रूप था और नामदेव तथा ज्ञानेश्वर ने सम्पूर्ण महाराष्ट्र को इससे परिचित कराया। 'जय-जय विठ्ठल, जय हरि विठ्ठल' की धुन आज भी महाराष्ट्र के गाँव-गाँव में गूँज रही है, जिसको गाते-गाते लोग दिव्य आनन्द की मस्ती में डूब जाते हैं।

जब मैं पहली बार अन्दर मन्दिर में गयी, वे बोले, "भगवान के चरणों में अपना सिर रखो।" कुछ वर्षों पहले एक ऑस्ट्रेलिया का व्यक्ति दर्शन के लिए यहाँ आया था। उसने बताया कि जब उसने अपने सिर से विठ्ठल के दाहिने पैर का स्पर्श किया तो उसे ऐसा लगा जैसे उसका सिर भगवान के अंगूठे से चिपक गया हो। एक ब्राह्मण ने उसे सहारा देकर एक कुर्सी पर बिठाया और वह वहाँ एकदम मौन इस अद्‌भुत अनुभव में डूबा जाने कितनी देर बैठा रहा।

आज के दिन, पहले सामान्य पूजा होती है उसके बाद हम विठ्ठल को पारम्परिक ढंग से स्नान कराते हैं। विठ्ठल जगमगा रहे हैं जैसे-जैसे अभिषेक का जल उनके सिर से उनके पूरे शरीर पर डाला जा रहा है। कितने ही सन्त इसी स्थान पर बैठे थे जहाँ मैं आज बैठी हूँ

और ऐसे ही अभिभूत हो भगवान को देखते रहे हैं। तुकाराम, एकनाथ, मुक्ताबाई। मुझे उस समय ऐसा लगा कि जब वे उनको देख रहे थे, तो एक काली मूर्ति को नहीं वरन् ईश्वर को देख रहे थे; चिति को देखा उन्होंने, जगमगाते नील प्रकाश को देखा। ज्ञानेश्वर ने जब विठ्ठल के बारे में बताया, "एक अतीव सौन्दर्य युक्त नील पुरुष", तो उनका शायद यही मतलब था।

यही विठ्ठल, उनके लिए, जीवन्त हो उठे। वे अपने सिंहासन से उतरकर, अपनी पत्नी रुक्मिणी के साथ, उनके घर उनसे मिलने आये, उनके साथ हँसे, उनकी समस्याओं को सुना, उनके फटे-पुराने कम्बल ओढ़े और उनके घर का साधारण भोजन किया।

यही विठ्ठल थे जो जनाबाई के साथ चक्की पिसवाते थे क्योंकि वृद्धा होने के कारण वे अकेली चक्की नहीं पीस पाती थीं। यही विठ्ठल लँगड़े तीर्थयात्री कूर्मादास से मिलने सड़क पर आये, क्योंकि पण्ढरपुर में हो रहे बड़े उत्सव में वह भाग लेना चाहता था पर लँगड़ा होने के कारण समय पर पहुँचने के लिए जल्दी चल नहीं सकता था।

इन्हीं विठ्ठल ने कान्होपात्रा को वेश्या का जीवन बिताने से बचाया। इसी कक्ष में खड़े होकर उसने भगवान से प्रार्थना कीः "भगवान मैं केवल आप से प्रेम करना चाहती हूँ।" उसका स्वर आर्द्रता से इतना भरा हुआ था कि मन्दिर के बाहर खड़े सिपाही जो उसे राजा के महल में ले जाने के लिए आये थे, रो रहे थे। उसके बाद पूर्ण निस्तब्धता छा गयी। और कुछ क्षणों बाद, जब वे मन्दिर में आये तो वह जा चुकी थी। किंवदन्ती यह है कि वह अपने विठ्ठल में पूर्ण लीन हो गयी थी, इन्हीं विठ्ठल के साथ।

बाबा मुक्तानन्द प्रायः विठ्ठल से मिलने जाया करते थे और दो वर्ष पूर्व गुरुमाई पण्ढरपुर गयीं। जब वे अन्दर के कक्ष में गयीं तब उनकी आँखों में आँसू थे। उन्होंने एक दिन में, विठ्ठल की चार पूजाएं कीं। दस घण्टे गुरुमाई ने इस मन्दिर में बिताये।

मैंने विठ्ठल को स्नान कराया। स्नान कराते हुए मुझे यह स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि वह केवल मूर्ति नहीं वरन् उसमें प्राण भी हैं। पुजारी ने विठ्ठल को भोजन कराने के लिए एक केला उठाया और उनके मुख के पास ले गये। मैं मन ही मन कह रही हूँ, "केला पास ले जाओ, वे खा कैसे सकते हैं जब केला उनके मुँह से पूरा एक इंच दूर है!" मुझे वह कहानी याद आ गयी। जब विठ्ठल ने बचपन में नामदेव द्वारा चढ़ाया भोजन स्वयं साक्षात प्रकट हो ग्रहण किया।

मैं विठ्ठल को निहार रही हूँ और मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि वे भी मुझे देख रहे हैं। एक ब्राह्मण वैदिक मन्त्रों का उच्चारण कर रहा है और मैं धीरे-धीरे एक आन्तरिक माधुर्य में डूबती जा रही हूँ। मैं मन ही मन प्रार्थना करने लगीः "मैं समर्पण के साथ सेवा कर सकूँ," पर तभी एक और अन्तर आवाज़ मन में उभरती हैः "मुझसे वह देने के लिए मत कहो जो तुम चाहती हो। वह लो जो मैं देना चाहता हूँ।"

कुछ-कुछ असमञ्जस की सी स्थिति में मैं सोच रही हूँ, "भगवान मुझे क्या देना चाहता है।" और तभी उत्तर एकाएक एकदम स्पष्ट हो जाता हैः मैंने महसूस किया कि जो कुछ भी मैं करती हूँ उसमें भगवान की सहायता माँगती हूँ और उसके बाद हर कार्य में सफलता की आशा करती हूँ। जो भी बाधाएँ मेरे सामने आती हैं उन्हें चुनौती या उपहार नहीं मानती वरन् व्यक्तिगत अपमान समझती हूँ!

मन्दिर से निकल मैं अपनी यात्रा चालू रखती हूँ। मुझे विठ्ठल के आशीर्वाद का एक प्रभाव तो स्पष्ट दिखायी पड़ रहा हैः जैसे-जैसे ऊँची नीची सड़कों पर कार आगे बढ़ रही है, मैं यह अनुभव कर रही हूँ कि मैं आज ईश्वर के हर उपहार को अंगीकार कर सकती हूँ —

सड़क, यात्रा के उलटे-सीधे घण्टे और कहीं अधिक विस्तृत रूप में यह जीवन, यह स्वरूप जिसमें मैं रहती हूँ, वे लोग जिनसे मैं कहीं न कहीं जुड़ी हूँ — मैं इन सबका आनन्द उठा सकती हूँ जब तक अपने आपको याद दिलाती रहूँ, उस परमात्मा का नाम स्मरण करते हुए, कि इन सबका स्रोत 'वह' है।

गोमाई

अनेक तीर्थयात्रियों में से गोमाई की कहानी सबसे मार्मिक है। गोमाई एक ब्राह्मण विधवा थी जो झोली में थोड़ा सा आटा मात्र लेकर पण्ढरपुर की यात्रा पर निकल पड़ी थी। घर-घर भिक्षा माँगती और पेट भरने के लिए थोड़ा सा भोजन करती वह अपनी तीर्थयात्रा पर आगे बढ़ती रही। अन्त में अनेक बाधाओं को पार कर वह चन्द्रभागा नदी के किनारे पहुँच गयी पर नदी में बाढ़ आयी हुई थी। पानी उफान मार रहा था। वह किसी भी तरह नदी पार न कर सकती थी।

गोमाई ने नाविकों को अपना आटा देते हुए उसे पार पहुँचाने की विनती की। उनमें से एक बोला, "अरे बुढ़िया! केवल धन देने से ही तू पार जा सकती है।"

हर किसी से अपमानित हो अंत में गोमाई एक पत्थर पर बैठकर रोने लगी। "मैं अब अपने भगवान को न देख सकूँगी।" उसने कहा, "इतनी दूर आना यों ही व्यर्थ चला जायेगा। हे भगवान! हे भगवान!"

यह करुण पुकार सुन भगवान विठ्ठल स्वयं नाविक का वेष धर, नाव लेकर वहाँ आये जहाँ गोमाई बैठी थी। उन्होंने उसे पुकारते हुए कहा, "बूढ़ी माँ, मैं तुम्हें पार ले जाऊँगा।"

"बाबा" उसने कहा, "मैं बहुत निर्धन हूँ और धन नहीं दे सकती। केवल मेरे पास थोड़ा सा आटा है।"

"तुम्हें मुझे धन देने की आवश्यकता नहीं है।" यह कहते हुए भगवान ने उसे नाव पर बिठाया और दूसरे किनारे पर पहुँचा दिया।

गोमाई ने कहा, "मैं आपकी ऋणी हूँ। मुझे आपको कुछ तो देना ही है। क्या आप यह आटा नहीं लेंगे?"

भगवान ने उससे कहा कि अगले किसी त्यौहार पर वह उस आटे के पुए बनाकर एक ब्राह्मण को खिला दे; यही उनका मेहनताना होगा। लेकिन जब अगला त्यौहार आया तो शहर का एक भी ब्राह्मण गोमाई की ओर देखने तक को तैयार न था। गोमाई ने प्रण किया कि जब तक वह ऋण नहीं चुका देगी तब तक अन्न का एक दाना भी मुँह में नहीं डालेगी। अतः एक बार फिर भगवान ने गोमाई के लिए एक निर्धन किन्तु सज्जन ब्राह्मण का रूप धारण किया। भगवान ने उससे कहा, "मैं मन्दिर में रहता हूँ। यदि तुम मेरे लिए यहीं कुछ पुए बना दोगी तो मैं बहुत आनन्द व प्रेम से वे पुए खाऊँगा।" और उन्होंने ऐसा ही किया।

नये प्रदेश -सत्य एक

जब श्री गुरुमाई समक्ष नहीं होतीं तो हमें चाहिए हम उन्हें मन के वीडीयो और दृष्टि से देखें। जैसे कैमेरा एक व्यक्ति का पीछा करता है, विभिन्न भावों को, मूडों को, पार्श्व वातावरण को चित्रपट पर दिखाता है, वैसे ही हम देखते चलेंगे श्री गुरुमाई को। वे कहाँ हैं, वहाँ चलिये, क्या कर रही हैं वह देखिये। देखिये, वे कैसे-कैसे देशों को कैसे-कैसे व्यक्तियों को शक्ति के स्फुलिंगों से अनुग्रहीत कर रहीं हैं।

हाँगकाँग के बाद यात्रा का हमारा अगला चरण था जापान। सबसे पहले श्री गुरुमाई क्योटो गयीं जहाँ शताब्दियों से मन्दिरों का मेला लगा है और जिन्हें श्री गुरुमाई ने अपनी उपस्थिति से शक्ति-पूरित किया। एक बात जो हमने वहाँ देखी वह यह थी कि किसी भी मन्दिर में जायें, पहले, भारत की ही तरह, जूते उतारने पड़ते हैं। मन्दिर में अन्दर पहनने के लिए वे छोटी-छोटी चप्पलें देते हैं और अन्दर जाने से पहले हाथ धोते हैं। इस तरह से शुद्ध होने के बाद प्रवेश करते हैं।

जब हम पहले दिन मन्दिर देखने के लिए निकले, चारों ओर बर्फ़ के मुलायम पहल ही पहल थे — श्वेत, निर्मल बर्फ़। पता लगा पहले दिन बहुत अधिक हिमपात हुआ था। शहर के आस-पास, पूरे क्षेत्र के ऊपर जैसे शान्ति व निर्मलता की चादर बिछ गयी थी। क्योटो में हमें बहुत ही गहरी शान्ति का अनुभव हुआ।

किन्काकू-जी प्रसिद्ध 'गोल्डेन पवैलियन' — वर्षा हो रही है। आनन्द तब और भी बढ़ जाता है जब श्री गुरुमाई हम सबसे कहती हैं कि एक क्षण रुककर छतों पर गिरती पानी की बूँदों की छम-छम सुनो, बांस की नालियों में से धीरे-धीरे बहते पानी की ध्वनि सुनो। उपवनों के बीच में से चलते हुए हम सब एक झील के पास पहुँचते हैं — झील में रंग-बिरंगी मछलियाँ। याद आया हमें बताया गया था कि जाड़े के मौसम में इन मछलियों को कभी भूख नहीं लगती। श्री गुरुमाई ने कहा, "चलो देखते हैं।" उन्होंने वे डबलरोटी के टुकड़े निकाले जो हमारे पास थे। जैसे ही श्री गुरुमाई झील के पास पहुँची, मछलियाँ तुरन्त उछल कर ऊपर आ गयीं, उनके मुख आशा से खुले हुए थे — 'प्रसाद' पाने के लिए आतुर।

अमिता ट्रिनीटि — यह एक खुला मन्दिर है जिसमें भगवान बुद्ध की विशाल मूर्ति है और उनके दाहिनी ओर दया की देवी क्वान यीन हैं। यहाँ के पुजारी मन्त्र करने के लिए बाहर आये ही थे कि श्री गुरुमाई यहाँ पहुँच गयीं। बहुत देर तक वे यहाँ खड़ी मंत्र सुनती रहीं। यहाँ सबको एक-एक मोमबत्ती दी जाती है जिस पर सब अपना-अपना नाम लिखते हैं और फिर वह मोमबत्ती बुद्ध की मूर्ति के सामने जलायी जाती है। ऐसा कहा जाता है कि जो भी इच्छा यहाँ करते हैं वह पूरी होती है। श्री गुरुमाई ने सबको एक-एक मोमबत्ती दी। सबने अपना-अपना नाम उस पर लिखा और मनौती मानी परन्तु श्री गुरुमाई ने पहले उस पर 'गणेशपुरी' लिखा और फिर 'ॐ नमः शिवाय' —. कितनी एकाग्रता से, सम्हाल कर वे यह लिख रहीं थीं। फिर बहुत प्रेम से उन्होंने वह



क्योटो के एक प्रसिद्ध मन्दिर में श्री गुरुमाई व मंडली

मोमबत्ती बुद्ध के सामने रखी।

भारत की ही तरह जापान में भी सड़क के किनारे-किनारे छोटे-छोटे शिन्तो धर्म मन्दिर हैं। इन मन्दिरों में शिला-खण्डों को [illegible] रखा गया है जो कि शिला-खण्ड किसी विशेष रूप की आकृति के नहीं होते। यहाँ अनगिनती [illegible] प्रसाद के रूप में मिठाई अर्पित करते हैं।

रायोन-जी मन्दिर — क्योटो में हमारा दूसरा दिन — कितना अद्भुत था वह। शिला-उद्यानों (रॉक गार्डन) को थोड़ा समय देखते रहने पर तन-मन एक गहरी शांति से भीग जाता था। ऐसी अनुभूति होती कि वास्तव में किसी ने यहाँ कभी बहुत तपस्या की है।

श्री गुरुमाई एकदम शान्त, एकदम मौन रहतीं, शान्ति उन्हें बहुत प्रिय जो है। जब वे चारों ओर धीमे-धीमे घूम रहीं थीं, हमें ऐसा महसूस हो रहा था मानों भारत की धरती पर चल रही हों। छोटी से छोटी बात का ध्यान रखा गया था वहाँ। हमें गणेशपुरी में बगीचे की सेवा की याद आ गयी। बहुत अधिक बातचीत करते हुए आप इस प्रकार के उद्यान कैसे बना सकते हैं। एक गहन शान्ति से ही उनका निर्माण हो सकता है। उनका पूरा जीवन ही मौन का, शिस्त का जीवन है। बहुत ही सादगी है वहाँ।

इनमें से अनेक परम्पराओं का जन्म भारत में हुआ। श्री गुरुमाई बार-बार कहतीं कि हमारे भारत में जो कुछ है उसी का प्रतिबिम्ब है यहाँ की हर वस्तु में। चुपचाप श्री गुरुमाई अलग-अलग वस्तुओं की ओर संकेत भर करतीं — एक पत्थर यहाँ, एक शाखा उधर या कोई बहुत ही रोचक ढंग का पेड़ अथवा झाड़ियों पर गिरी हुई भिन्न आकृतियाँ लेती बर्फ़। ऐसा लगता जैसे सारा संसार हमारी आँखों के सामने चलचित्र की भांति फिर रहा है। हमें ऐसा लगा कि यदि हम विचारों में उलझे रहेंगे तो उस उद्यान की सुन्दरता के प्रति सजग नहीं रह पायेंगे। सब कुछ देखने-समझने के लिए अपना मन पूरी तरह रीता करना ही है।

किन्काकूजी (स्वर्ण मन्दिर) की स्थापना एक स्वामी ने की थी। वहाँ उनका ऊपर की ओर देखता हुआ, एक चित्र है। ऐसी मान्यता है कि उन्होंने अपनी पलकें इसलिए काट दीं थीं जिससे कि वे ध्यान के बीच में सो न जायें। अतः उनकी आँखे हमेशा खुली

ही रहती हैं। वे बहुत कुछ हमारे स्वामियों की भांति लगते हैं।

वहीं पर संस्कृत भाषा में कुछ पंक्तियाँ लिखी हुई हैं। साथ ही जापानी व चीनी भाषा भी अंकित है। ऐसा कहा जाता है कि यह, यह दर्शाता है कि किस दिशा-स्रोत से सारे उपदेश आये हैं। वहाँ पर बहुत अधिक शक्ति का अनुभव होता है।

दिसेनिन — यह भी शिलाओं से बने अपने उद्यानों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। यह जीवन की इस यात्रा को, और संसार सागर को पार कर स्वर्ग के किनारे तक पहुँचने की ओर इंगित करता है।

इन उद्यानों के किनारे बने एक मन्दिर में हमने गुरुगीता का पाठ किया। मन्दिर के मुख्य पुजारी पूरी गुरुगीता के समय वहाँ बैठे रहे। पाठ से बहुत ही अभिभूत थे वे। हमारे गुरुगीता समाप्त करने के बाद पुजारी जी ने हम सबको बहुत-बहुत धन्यवाद दिया कि हमने उनके मन्दिर में बैठकर संस्कृत में पाठ किया। हमने उन्हें बाबाजी की 'मेडिटेट' पुस्तक दी। जाते-जाते हमने देखा कि वे उसमें इतना डूब गये थे कि हमारे जाने का भी उन्हें भान न था।

होरयूजी — यह जापान का सबसे पुराना बौद्ध मन्दिर है। बनावट में पुराने चीनी मन्दिरों की तरह था यह। विशाल! श्री गुरुमाई ने कहा, "मन्दिर ऐसा ही होना चाहिए। बहुत बड़े स्थान की आवश्यकता होती है। उन दिनों राजा-महाराजा धार्मिक स्थलों के लिए बहुत भूमि दान में दिया करते थे। इतना विस्तृत है सब कुछ कि यहाँ व्यापकता की अनुभूति होने लगती है। मन्दिर के बहुत समीप घर भी नहीं बनाने चाहिए।"

हयाऐ पर्वत — श्री गुरुमाई को यह स्थान बहुत पसन्द आया। इस पर्वत की चोटी पर, प्रशिक्षण के लिए, जापान के सभी सन्यासी जाते हैं। सारा क्योटो यहाँ से दीखता है। हयाऐ पर्वत का मठ जापान के सबसे प्राचीन मठों में से एक है।

इस स्थान के सम्बन्ध में एक कहानी है कि जिसने सबसे पहले यहाँ बैठकर अपनी साधना प्रारम्भ की उसने एक गिरे हुए वृक्ष से अपने इष्ट की मूर्ति बनायी। फिर वह चीन गया क्योंकि उसे गहन अनुभव हो रहे थे पर वह उन्हें समझ नहीं पा रहा था। वह चीन से, अपने साथ बौद्धमत वापिस लाया। जब वह लौटा तो उसमें इतनी अधिक शक्ति थी कि लोग उसके पास आकर अध्ययन करने लगे। बहुत जल्दी ही इस पर्वत पर सहस्रों सन्यासी रहने लगे। उनमें से अनेक तो बाद में प्रसिद्ध बौद्ध सन्यासी हुए। यह वह स्थान था जहाँ महान गुरु आकर वाद-विवाद किया करते थे। वाद-विवाद करने का हॉल बहुत विशाल था — नैसर्गिक प्रकाश से भरा हुआ। श्री गुरुमाई ने कहा कि यही वह स्थान है जहाँ से क्योटो को शक्ति मिलती है।

शाही उद्यान — ये यहाँ के सबसे प्रसिद्ध उद्यान माने जाते हैं। यहाँ विशाल शिला-उद्यान हैं। यहाँ एक झील भी है जो चीनी परम्परा के अनुसार हृदय के आकार की है। उसकी प्रदक्षिणा, मन को पूर्ण निश्चल कर देती है और हृदय शुद्ध होकर निर्मल हो जाता है।

यहाँ 'सायहोजी' मन्दिर में बहुत सुन्दर-सुन्दर घण्टे हैं, स्वर्ण-लेप किये पूजा-पात्रों पर छोटी-छोटी घण्टियाँ लगी हैं। जापान में भारत की ही तरह घण्टियाँ बजाने पर बहुत महत्त्व दिया जाता है। घण्टियों की टनटनाहट अच्छे स्पन्दनों को अन्दर रखती है और बुरे स्पन्दनों को बाहर। यहाँ बुद्ध के सामने बैठकर हमने 'रुद्रम' पढ़ा।

इस उद्यान में श्री गुरुमाई को जो एक चीज़ बहुत ही पसन्द आयी, वह थे बाँस के कुञ्ज। बाँस आठ-आठ इन्च मोटे थे। श्री गुरुमाई ने हमें उनके बीच में से जाकर उन्हें छूने को कहा। थोड़ी देर बाद श्री गुरुमाई ने कहा, "थोड़ा पीछे रुको —



किन्काकू-जी में मछलियों को खिलाती श्री गुरुमाई

समूह से अलग — स्थिर रहो और इस शान्तता को अपने में उतरकर रोम-रोम को स्पर्श करने दो।" ध्यान करने की हम सबकी गहरी इच्छा हो रही थी। एक तीव्र शक्ति हमें अन्दर की ओर खींच रही थी। मन पूर्ण विलीन होना चाह रहा था।

कोयासन — कोयासन जाते समय चारों ओर का परिदृश्य बिलकुल वैसा ही था जैसे हमारी कल्पना का जापान। हरे-भरे जंगलों से आच्छादित ऊँची-ऊँची पर्वत श्रृंखलाएं और उनके बीच घिरा रहस्यमय कोहरा। एक जगह श्री गुरुमाई ने कहा, "यह एकदम कश्मीर जैसा लगता है।"

हम दोपहर को कोयासन पहुँचे। एक होटल में स्वादिष्ट भोजन करने के बाद हम सभी कोयासन के मुख्य समाधि-मन्दिर 'ऑकेनोयर' पहुँचे। यह एक बहुत ही प्रसिद्ध संत कोबो दायशी का समाधि-मन्दिर है। दायशी का अर्थ होता है, 'महान गुरु'। बहुत ही प्राचीन कब्रिस्तान की बीच से होते हुए हम आगे बढ़ रहे थे जहाँ हज़ारों-हज़ारों मज़ारें, मक़बरे हैं। एक तरह से कोयासन जापान का वाराणसी है। लोग चाहते हैं कि मृत्यु के बाद उन्हें यहाँ दफ़नाया जाये जिससे कोबो दायशी का करुणामय प्रकाश, मृत्यु के बाद उन्हें एक सम्यक् लक्ष्य तक पहुँचा सके।

पास के ही पर्वत से निकलने वाली 'तमागवा' नदी पर बने पुल को पार कर हम दूसरी ओर पहुँचे। नदी के समीप जल-प्रपातों के सामने मूर्तियों की एक पंक्ति थी। तीर्थयात्री यहाँ आकर बुद्ध की तथा देवदूतों की मूर्तियों पर जल डालकर उन्हें जाग्रत कर उनसे आशीर्वाद माँगते हैं।

यहाँ पर एक महिला भक्त को एक अद्‌भुत अनुभव हुआ। उन्होंने कहा, "जब मैं मूर्तियों पर जल डाल रही थी, मुझे उन संत की उपस्थिति का अनुभव हुआ जिनका समाधि-मन्दिर पास में ही है। मैंने जल डालते हुए अपनी मनोकामना की — मैं यह अनुभव करना चाहती थी कि मैंने पूर्ण रूप से अपना जीवन श्री गुरुमाई के चरणों में अर्पित कर दिया है और मैं बस जीवन भर पूर्ण श्रद्धा-विश्वास के साथ श्री गुरुमाई की सेवा कर सकूँ। मेरी प्रार्थना सुन ली गयी है, मैं इसका पूर्ण संकेत चाहती थी। अगले दिन सुबह चार बजे मैं ध्यान करने के लिए गयी तो मुझे गणेशपुरी में श्री गुरुमाई का

दृष्टान्त हुआ। मैंने देखा कि श्री गुरुमाई एक कार्यालय में से जा रहीं हैं और मैं उनके पीछे-पीछे चल रही हूँ। तभी श्री गुरुमाई मुड़ीं और उन्होंने मेरे हाथ में अपनी पादुकाएँ पकड़ा दीं। मेरी आँखों से कृतज्ञता के आँसू बह रहे थे।"

वहाँ से हम मुख्य मन्दिर में गये। यहाँ एक अतीव सुन्दर, अलंकृत हॉल है जहाँ सहस्त्रों दीप जलते रहते हैं। लोग यहीं आकर कोबो दायशी से प्रार्थना करते हैं। समाधि-मन्दिर इस इमारत के ठीक पीछे है। ऊँचे-ऊँचे देवदार के वृक्षों के बीच में यह एक बहुत सादा सा लकड़ी का कक्ष है जहाँ सहस्त्रों तीर्थयात्री अगरबत्ती, मोमबत्ती और दक्षिणा अर्पित करते हैं। उनकी भक्ति की शक्ति से भरा-भरा लगता है पूरा वातावरण।

नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कोबो दायशी का जन्म हुआ था। आजतक कोबो दायशी जापान के सबसे प्रिय संत हैं। बासठ वर्ष की अवस्था में हमारे ज्ञानेश्वर के समान ही उन्होंने भी जीवित समाधि ली। उनके शरीर में, उनकी शक्ति आज भी चैतन्य मानी जाती है।

यहीं पर एक और महिला भक्त को भी बहुत ही शक्तिशाली अनुभव हुआ। "मैं उनके समाधि-मन्दिर में खड़ी थी। तभी मेरे अन्दर से एक स्वर उभरा जिसने मुझे संत से यह पूछने को प्रेरित किया, 'क्या आप मुझे कुछ बताना चाहेंगे?' कोबो दायशी ने उत्तर दिया। मैंने उन्हें कहते सुना, 'गुरुमाई संसार की महानतम सदेह गुरु हैं। कुछ भी लापरवाही से मत लेना।' यह सुनते-सुनते मैं अन्तर में बहुत गहरे उतर गयी। भृकुटी के मध्य में किसी के तीन बार छूने से मैं ध्यान से बाहर आयी — सामने श्री गुरुमाई खड़ीं थीं!"

अगले दिन सुबह हम एक बार फिर कोबो दायशी के समाधि-मन्दिर पर पहुँचे। इस बार हम भूमि के नीचे एक कक्ष में गये जहाँ पर एक वेदी थी। वहाँ हमने श्री गुरुमाई के साथ गुरुगीता की। गुरुगीता करने से जो शक्ति उत्पन्न हुई वह बहुत ही स्पन्दनशील थी। अन्त में हम सब की आँखें बन्द होने लगीं और हम गहरे ध्यान में चले गये। फिर जाते-जाते हमने कोबो दायशी के लिए 'शिव मानस पूजा' गायी। कोयासन की हमारी यात्रा का यह एक अति विशिष्ट पड़ाव था।

श्री गुरुमाई जहाँ-जहाँ गयीं, भाग्य का लिखा कितनी ही बार सामने आया — अनेक घटनाओं के रूप में। बेल्जियम का एक कैथोलिक धर्म-प्रचारक कोयासन के उद्यानों में घूम रहा था तभी उसने श्री गुरुमाई और उनकी मंडली को देखा। श्री गुरुमाई ने सीधा उसकी आँखों में देखा, उसे तुरन्त यह अनुभव हुआ कि वे कोई साधारण मानव नहीं हैं। अपने इस अनुभव की पुष्टि के लिए वह मन ही मन प्रार्थना करने लगा और उसी क्षण श्री गुरुमाई ने उसके पास आकर उससे पूछा, "तुम कहाँ से आये हो?" उसके बाद उन्होंने उसे सबके साथ गुरुगीता करने के लिए आमन्त्रित किया। पूरे दिन वह अलग-अलग लोगों से उनके शक्तिपात के अनुभव सुनता रहा, यह सुनता रहा कि कैसे श्री गुरु ने उनके जीवन को परिवर्तित कर दिया है। दिन समाप्त होते-होते उसका पूरा शरीर शक्ति कणों से स्पन्दित हो रहा था, काँप रहा था। बाद में वह टोक्यो में ध्यान-शिविर लेने आया।

ओसाका — जापान की संस्कृति के हृदय स्थान क्योटो की गहरी प्रशांति के बाद श्री गुरुमाई जापान के व्यापार-उद्योग के केन्द्र ओसाका पहुँचीं। उस शहर में, जो सामान्यतः आध्यात्मिकता से लेशमात्र भी सम्बन्धित नहीं है, श्री गुरुमाई की कृपा-शक्ति ने अद्भुत जादू सा कर दिया। वहाँ कोई सिद्धयोग केन्द्र नहीं था और मात्र कुछ गिने-चुने भक्त थे। दो भक्तों ने धीरे-धीरे लोगों से मिलना-जुलना प्रारम्भ



एक मन्दिर में, मन्दिर के मुख्य पुजारी के साथ जापानी चाय समारोह में

किया। बाद में स्पन्दकारिका के लोग वहाँ पहुँचे पर जापान की संस्कृति या भाषा का उन्हें बहुत ही कम ज्ञान था। किन्तु इस सबके बावजूद भी ओसाका के लोगों के हृदयों को गुरुकृपा का स्पर्श हुआ। सिद्धयोग के विषय में बिना किसी पूर्व जानकारी के, लोग कार्यक्रमों में आने लगे। बहुतों ने सेवा के लिए अपना नाम भी लिखाया, यद्यपि अपनी-अपनी नौकरियों में सभी प्रति सप्ताह साठ से सत्तर घण्टों तक कार्य करते थे।

ओसाका का एक वास्तुविद् था। उसके मित्र कहते, "वह हमेशा चिन्तित रहने वाला, रूखा व तनाव से घिरा व्यक्ति है जिसके चुटकुले ऐसे होते हैं जिन्हें सुनकर हँसी भी नहीं आती।" वह वास्तुविद् सिद्धयोग-कार्यक्रमों में आने लगा। शुरू-शुरू में तो बस अपने तक ही सीमित रहता, लेकिन जैसे-जैसे वह अधिक से अधिक गुरुसेवा करने लगा, खुलता गया, हलका होता गया। वह एकदम अलग ही व्यक्ति बन गया था, उसके चेहरे पर, आँखों में एक चमक आ गयी थी। जब किसी ने उससे पूछा कि उसे कैसा लग रहा है तो बस वह अपने हृदय पर हाथ रखकर खड़ा हो गया। साथ में काम करने वाले लोग भी चकित थे कि यह अचानक इतना हँसमुख कैसे हो गया है! कारण जानने के लिए तीन लोग कार्यक्रम में आये और फिर नियमित हर कार्यक्रम में आने लगे।

इस छोटे से स्तर से शुरू होकर ओसाका में कार्य तीव्रता से बढ़ने लगा और जब तक श्री गुरुमाई वहाँ पहुँची कितने ही लोग उनकी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहे थे।

श्री गुरुमाई ने जापान में अपने हर कार्यक्रम का प्रारम्भ विशुद्ध जापानी भाषा में, "बड़े प्रेम व सम्मान से आप सबका हार्दिक स्वागत" कहकर किया, उनका वह शक्तिपूर्ण स्वागत जिसे सुनकर लोगों को दिव्य प्रेम का अनुभव होता है।

श्री गुरुमाई ने कहा, "आज हवा में कितना माधुर्य है। मैं उसकी सुगन्ध का अनुभव कर सकती हूँ। मुझे अपने हृदय में बहुत आत्मीयता का अनुभव हो रहा है। और आज पहली बार मैंने यह कहते हुए अपना प्रवचन प्रारम्भ किया है... एक नये स्थान पर हृदय इतनी आत्मीयता का अनुभव कर रहा है, यह बहुत ही विशिष्ट है और

इसलिए मैंने सोचा मैं इस विषय में बताऊँगी।"

श्री गुरुमाई ने जापान की समृद्ध संस्कृति के बारे में बोलते हुए कहा, "यह देश अतीत का और वर्तमान का एक बहुत ही दुर्लभ मिश्रण है। इससे मठों के द्वारा मन्दिरों एवं सन्यासियों की प्राचीन परम्परा को आज भी जीवित रखा है। पर साथ ही तकनीकी ज्ञान पर भी अपना पूर्ण आधिपत्य प्राप्त किया है। तथापि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, आदि स्रोत को याद रखना कठिन से कठिन होता जाता है। नयी-नयी खोजों के बहाव में हम भी बह जाते हैं।" अपने पूरे प्रवचन में श्री गुरुमाई ने बार-बार कहा, "सिद्धयोग हृदय की यात्रा है।" जब उन्होंने लोगों से यह कहा कि 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र कल्पवृक्ष के समान है जिसे वे अपने साथ अपने घर ले जा सकते हैं और यह सतत उनके साथ रहेगा, कई लोगों ने नोटबुक में बहुत दत्तचित्त हो मन्त्र लिख लिया।

बाद में एक महिला ने कहा कि कार्यक्रम के दौरान वह हर क्षण श्री गुरुमाई को देखते रहना चाहती थी अतः ध्यान के समय बत्तियाँ बुझ जाने पर भी वह अपनी आँखें खोले रही और अन्धेरे में भी श्री गुरुमाई को देखती रही। तभी उसने देखा कि एक श्वेत प्रकाश श्री गुरुमाई से निकल रहा है, एक ऐसा प्रकाश जिसने हॉल के हर व्यक्ति को अपने में समेट लिया था।

किसी ने देखा कि हॉल में बोधिसत्व आशीर्वादों की वर्षा कर रहे हैं — यह एक बहुत ही स्पष्ट उदाहरण है कि कैसे शक्ति हमारे जीवन में उसी रूप में प्रवेश करती है, जिस रूप में वह हमें प्रिय है।

श्री गुरुमाई ने ओसाका पर अपने प्रेम की वर्षा कर दी थी।

गणेशपुरी के कार्यक्रम

मई २५ — २७	— बाबाजी के जन्मदिवस पर नाम-सप्ताह
मई २६	— सिद्धयोग ध्यान कोर्स (हिन्दी)
मई २८	— बाबाजी के जन्मदिवस पर यज्ञ
मई २९ — जून ५	— भारतीय केन्द्र संचालक कोर्स
जून २	— सिद्धयोग ध्यान कोर्स (हिन्दी)
जून ६ — ७	— नील बिन्दु कोर्स (हिन्दी)
जून २२	— ध्यान-शिविर
जून २३ — २४	— श्री गुरुमाई के जन्मदिवस पर नाम-सप्ताह

नीलेश्वरी सदस्यों के लिए विशेष सूचना

ऐसा पता चला है कि कभी-कभी कुछ सदस्यों को नियमित पत्रिकाएँ नहीं मिल पातीं। सब कुछ ध्यान से देखने पर इसके कुछ कारण हमारे सामने आये —

(१) डाक व्यवस्था में गड़बड़ी के कारण या तो पत्रिका मिलती नहीं या दो चार माह बाद मिलती है। इसके लिए आप एक पत्र अपने पोस्ट-मास्टर को लिखिए कि आपको पत्रिका हर माह नियमित नहीं मिल रही है। उसकी एक कॉपी पोस्ट मास्टर जनरल को भेजें, एक कॉपी हमारे पास भेजें और एक अपने पास रखें। पोस्ट मास्टर की कॉपी में यह अंकित करें कि आप उस पत्र की एक कॉपी पोस्ट मास्टर जनरल को भेज रहे हैं।

कुछ उत्तर न मिलने पर एक बार पुनः याद दिलाइये।

(२) आप जब अपना पता लिखते हैं तो या तो पता अधूरा होता है या स्पष्ट अक्षरों में नहीं होता। इसके लिए आप अपना पूरा पता एकदम स्पष्ट अक्षरों में लिखें।

(i) पूरा नाम — पहला नाम, यदि दूसरा नाम हो तो वह और अपना सरनेम जैसे — पटेल, पाटिल, भट्ट, गुप्ता, पान्डे आदि। जो भी स्पेलिंग पहली बार लिखें वही हमेशा लिखें।

(ii) मकान नं., मकान का नाम (यदि हो तो), मोहल्ले का नाम, शहर, कस्बे या गाँव का नाम, ज़िला, राज्य, पिनकोड *अवश्य* लिखें।

(iii) अक्षर बड़े और स्पष्ट लिखे गये हों, जो आसानी से पढ़े जा सकें।

(iv) यदि आप पुराने सदस्य हों तो अपना ग्राहक नं. अवश्य लिखें। मनी-ऑर्डर पर भी अपना पूरा नाम व पूरा पता लिखें।

(३) जब आप दक्षिणा भेजते हैं तो कभी-कभी यह नहीं लिखते कि दक्षिणा किस लिये भेज रहे हैं। इसके लिए स्पष्ट यह लिखें कि दक्षिणा 'नीलेश्वरी' के लिए भेज रहे हैं।

(४) कभी-कभी या तो ४०/- या ५०/- या १००/- भेजते हैं जबकि नीलेश्वरी की दक्षिणा ५५/- है। अतः नीलेश्वरी के लिए दक्षिणा भेजते समय यदि मनीऑर्डर से भेजें तो ५५/- ही भेजें और यदि चेक अथवा ड्राफ्ट से भेजें तो ६१/- भेजें (६/- बैंक भुगतान)।

(५) दक्षिणा भेजते समय यह अवश्य लिखें कि किस माह से आपको पत्रिका चाहिए। हमारे नियम के अनुसार, अब, यदि हमें दक्षिणा उस माह की १ तारीख तक मिल जाती है तो आपको पत्रिका उसी माह से मिलेगी अन्यथा *अगले माह* से।

(६) जैसा आपको मालूम ही है पत्रिका यहाँ से १५ तारीख को भेजी जाती है अतः कम से कम २० दिन उसकी प्रतीक्षा करने के बाद ही कुछ कार्यवाही करें।

आशा है आप इन सब बातों पर ध्यान देकर हमें सहयोग देंगे अन्यथा पत्रिका न मिलने पर हमारे लिए कुछ भी कार्यवाही करना मुश्किल हो जाता है।

Regd. No. MH/TW/20

32

जब तक मेरे में 'वह' नहीं था,
तब तक अयोध्या में राम नहीं,
गोकुल में कृष्ण नहीं,
बद्रीनाथ में नारायण नहीं,
काशी में शिव नहीं।
जब मेरे में 'नित्यानन्द' उतरा,
फिर सबमें सब देखा,
गोकुल में कृष्ण पूरा,
काशी में शिव पूरा,
सभी दिशाओं में पूर्ण आत्मा देखा।

बाबा मुक्तानन्द

मूल्य ७.०० रुपया